काव्यश्री

[भाग २]

अलंकार

लेखक

डॉ० सुधीन्द्र

एम० ए०, पी० एच० डी०

प्रकाशक

सरस्वती पुस्तक सदन, आगरा

मूल्य २।)

अर्थालंकार—

———

"सौन्दर्यमलङ्कारः"

"काव्य शोभाक राधर्मान् अलङ्कारान् प्रचक्षते।"

●

"अभिधा प्रकार विशेषा एवं अलंकाराः"

●

"वक्राभिधेय शब्दोक्ति रिष्टा वाचामलंकृतिः"

●

शोभासाधक तत्व काव्य का अलंकार अभिधान

'अलङ्कार' का अर्थ

अलंकार एक बड़ा गहन परन्तु रोचक विषय है। वाणी और अर्थ में सुन्दरता के लिए हम नित्य प्रति अलङ्कार का विधान अनादिकाल से करते चले आये हैं। वाणी और अर्थ सौन्दर्य के तत्व की खोज करते करते भारतीय आचार्यों ने अलंकारों की उद्भावना की थी।

अलङ्कार वाणी और अर्थ में 'सौन्दर्य' का विधान करता है। आज अनेक शताब्दियों पहिले भारतीय मनोषा यह पहिचान चुकी थी कि सौन्दर्य ही अलंकार है—सौन्दर्य अलंकार: ।

(काव्य और 'अलंकार')

रस यदि काव्य के आनन्द' तत्व का है तो अलङ्कार काव्य के सान्दर्य तत्व का, मैं यदि काव्य-पुरुष की कल्पना करू' तो रस उसके प्रच्छन्न आत्मिक गुण की भांति प्रतिष्ठित है, और अलङ्कार उसकी प्रकट सुन्दरता—शोभा है जो हठात् आकृष्ट करती है। इस उपमा से दोनों (रस और अलङ्कार) का सापेक्षिक मूल्य स्पष्ट होता है। एक आन्तरिक माधुर्य का रूप है—दूसरा वाह्य सौन्दर्य का स्वरूप।

आचार्य वामन ने कहा है—"सौन्दर्य अलङ्कार।" संक्षिप्त-तम शब्दों में यह अलङ्कार की कितनी व्यापक परिभाषा है। 'सौन्दर्य ही 'अलंकार' है।' वस्तुत काव्य में अलङ्कार सौन्दर्य का साधक तत्व है।

सौन्दर्य ही अलङ्कार है:—

इसी सारगर्भित परिभाषा को आचार्य अपनी भाषाओं में कहते आये हैं। दण्डी ने कहा था—'काव्य शोभा करान् धर्मानलङ्कारान् प्रचक्षते' (काव्य की शोभा का विधान करने वाले धर्मों (गुणों या तत्वों) को अलंकार कहते हैं।

यह कौन नहीं जानता कि काव्य के ऐसे अवसरण होते हैं, जिनमें रस का तत्व नहीं होता परन्तु वे न जाने क्यों हृदय को आकृष्ट करते हैं—कदाचित् वहाँ अलङ्कार का तत्व होगा। और कभी ऐसा होता है कि कविता व्यक्ति अलंकरण का तत्व नहीं है फिर भी हृदय उससे आप्लावित हो रहा है। कदाचित् वहाँ रस का तत्व होगा। दोनों अनिवार्य नहीं हैं और न दोनों अन्योयाश्रित। हाँ, एक दूसरे को उपकारक अवश्य है। दोनों हों तो सोने में सुगन्ध।

अलंकार से काव्य का अन्तरंग और वहिरंग आकर्षक होता है। उससे काव्य में सुन्दरता, या शोभा आती अवश्य है। प्रश्न है कि यह सुन्दरता या शोभा कहाँ होती है? वह होती है 'वचन-रचना के कौशल' में अवश्य वाग्विकल्प के अनन्त प्रकारों में। कहा भी है अभिधान प्रकार विशेषा एवं अलंकारा: (अलंकार सर्वस्व) इसी प्रकार 'वक्रोक्तिकार कुन्तक ने कहा—विधानों (के चतुरों) के कहने की विचित्र शैली ही 'वक्रोक्ति है और वही अलंकार है—

उमावेता वलकार्यो तयो पुनरलंकृति: ।
वक्रोक्तिरेव वैदाध्यभंगी भाषिति रुच्यते ॥

कविवर सुमित्रानन्दन पन्त के शब्दों में:—

अलङ्कार केवल वाणी की सजावट के लिए नहीं, वे

भाव की अभिव्यक्ति के विशेष द्वार है। भाषा की पुष्टि के लिए राग की परिपूर्णता के लिए आवश्यक उपादान है। वे वाणी के आचार, व्यवहार और रीति-नीति हैं, पृथक पृथक स्थितियों के पृथक स्वरूप, भिन्न अवस्थाओं के भिन्न चित्र हैं।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का कथन है:—

"भावों का उत्कर्ष दिखाने और वस्तुओं के रूप गुण और क्रिया का अधिक तीव्र अनुभव कराने में कभी कभी सहायक होने वाली युक्ति अलङ्कार है।'

अलङ्कार का लौकिक अर्थ है आभूषण। जो किसी वस्तु की शोभा बढ़ता है अथवा उसे सजाता है वह उसका अलङ्कार होता है। शास्त्र कहता है— 'अलङ्क्रियते अनेन इति अलङ्कार' जिसके द्वारा शोभा लाई जाती है वह अलंकार है।

अलङ्कार कविता में शोभा के साधन हैं।

काव्य का अलङ्कार उसकी शोभा का साधन है

साहित्य-दर्पण के रचयिता आचार्य विश्वनाथ ने कहा है-शोभा को अतिशय करने वाले, रसभाव आदि के उपकारक शब्द और अर्थ के अस्थिर धर्म [अङ्गद आदि आभूषणों की भाँति] 'अलङ्कार' कहलाते हैं [शब्दार्थ योरस्थिरा ये धर्माः शोभातिशायिनः]। (सा० द०)

इसी अस्थिर धर्म की ओर दृष्टि रखते हुए मम्मट ने काव्य की परिभाषा की थी।

अलंकृती पुनः क्वापि। शब्द–अर्थ दोष रहित हों, सुगणवन गुण सहित हों अलङ्कार हों भी या न भी हों, वह काव्य होता है।

काव्य के भाव और भाषा—ये दो अतरङ्ग और वहिरंग होते हैं। अथवा इन्हें उलटकर शब्द और अर्थ भी कहा जा सकता है। दोनों से काव्य का संघटन होता है। अलङ्कार शब्द का भी सौन्दर्य साधक है और अर्थ का भी।

अलङ्कार के भक्तों (अलङ्कार वादियों) ने अलंकार को काव्य को धर्म (या गुण) तक मान लिया।

'चन्द्रालोक' के रचयिता जयदेव ने तो यहां तक कह दिया है कि—

अङ्गी करोतु यः काव्यं शब्दार्था वन लंकृति।
असौ न मन्येत् कस्माद् नुष्णमनलं कृति॥ (१।२९)

अर्थात् जो अलंकार रहित शब्द और अर्थ वाले काव्य को अङ्गीकार करता है, वह कुष्णक अग्नि को उष्णता रहित क्यों नहीं मान लेता ?

यह मानना पड़ेगा कि अलंकार अत्यन्त प्राचीन काल से भाषा के साथ चला आया है।

प्राचीनतम साहित्य वेद में भी अलंकार की सत्ता मिलती है।

स्त्री के शरीर पर आभूषण की जो उपयोगिता है, वही उपयोगिता (काव्य की) भाषा में 'अलंकार' की है। इसलिए अलंकार को अलंकार (आभूषण) संज्ञा दी गई है। यदि स्त्री में नैसर्गिक सौन्दर्य हो तो अलंकार (भूषण) उसको अधिक आकर्षक और मोहक कर देते हैं। परन्तु यदि स्त्री को कुरूप ही मिला हो तो अलंकार उस सौन्दर्य नहीं प्रदान कर सकेंगे—कदाचित् अलंकार से ऐसी स्त्री की कुरूपता ही बढ़ जाये। फिर भी स्त्री अपने आपको आकर्षक करने के लिए अलंकार पहनती है।

भाषा में भी यदि सहज सौन्दर्य होगा तो 'अलंकार' उसमें शोभा ला सकते हैं परन्तु यदि वह अनगढ़ है और कुरूप हैं तो 'अलंकार उसमें विशेष सौन्दर्य नहीं ला सकते।

इसके अतिरिक्त आभूषण के भी जिस भार से स्वाभाविक सुषमा कुण्ठित हो जाती है उसी प्रकार अलंकार के भार से भाषा रमणीक की रमणीयता कुण्ठित हो जाती है।

काव्य का अलंकार यदि कविता के आन्तरिक सौन्दर्य को बढ़ाता है—तो अवश्य वह अभिनन्दनीय होता है।

अलंकार भाषा के सौन्दर्य या भाव की शोभा का साधक है परन्तु अलंकार की उपयोगिता की अपनी मर्यादा है इसमें कोई सन्देह नहीं।

काव्य का कार्य्य भाव-सृष्टि या भाव का चित्रण है। अलंकार काव्य के इस कार्य में एक उपकरण-मात्र हो सकता है। भाव के चित्रण में भाषा ही माध्यम बनती है। उसी से अभिव्यक्ति होती है। इस अभिव्यक्ति को प्रभावशाली और सुन्दर बनाने के लिए अलंकार की आवश्यकता पड़ती है। यही उसकी उपयोगिता है। परन्तु यदि वह भाव के चित्रण में बाधक होगा तो वह अपने धर्म से च्युत होगा। प्रायः प्राचीनों ने इस तथ्य को न पहिचान कर अलंकार को 'उपकरण' से कार्य बना दिया और वे कहने लगे—

भला बिना अलंकार के भी कविता हो सकती है अलंकार के बिना तो कविता उसी प्रकार नहीं सुहाती जैसे भूषण बिना स्त्री नहीं सुहाती।

जदपि सुजाति सुलच्छनी सुबरन सरस सुवृत्त।
भूषन बिन न बिराजई कविता वनिता मित्त॥ —केशवदास

अलंकार काव्य का सौन्दर्य है। आचार्य विश्वनाथ के

शब्दों से वह रस का उपकारक है-रसीदी नुपकुर्यन्तो ऽलंकारा ऽस्तेऽङ्गदा दिवत अलंकार कनक कुण्डल की भाँति रस के उत्कर्ष विधायक माने जाते हैं? यद्यपि अलंकार का केवल मात्र कनक कुण्डल कहना अनुचित है परन्तु वह रस का उत्कर्ष विद्यायक अवश्य हैं।

चन्द्रालोककार जयदेव ने उचित कहा है।

शब्दार्थयो:—प्रसिद्ध्या वा कवेः प्रौढ़ि वशेन वा।
हारादिव अलंकार संनिवेशो मनोहरः ॥

शब्द-अर्थ दोनों की प्रसिद्धि से अथवा कवि प्रौढ़ से अलंकार का संनिवेश मनोहारी हाता है।

पाश्चात्यक सौन्दर्यवादी मनीषी वेनदेतो क्राचे ने भी लिखा है।

"स्वयं यह प्रश्न कीजिए अलंकार (आभूषण) अभिव्यंजना के साथ कैसे जुड़ सकता है? बहिरंग रूप से? इस अवस्था में वह सर्वथा पृथक रहेगा। अन्तरंग रूप से इस अवस्था में भी या तो वह अभिव्यंजना की सहायता नहीं करता उसे कुंठित करता है अथवा वह उसका अँग ही बना कर केवल मात्र आभूषण नहीं रह जाता। वह तो समग्र अभिव्यंजना से अभिन्न और उसका एक विधायक अंग ही हैं।

वस्तुत: 'अलंकार का केवल शाब्दिक अर्थ न लेकर यह आर्थी अर्थ भी लेना होगा।

—: अलंकार का वर्गीकरण :—

शब्दालंकारः अर्थालंकार

'अलंकार' काव्य के शब्द और अर्थ (भाषा के अन्तरंग बहिरंग) पुरुष दोनों की सुन्दरता शोभा है। शब्द और अर्थ दोनों ही भाषा के अन्योन्याश्रित तत्व हैं। ये पार्वती-परमेश्वर की भाँति एक दूसरे में समाये हुये हैं।

"वागर्था विव संपृक्तौ.........................
..............पार्वती परमेश्वरौ। (कालिदास)

दूसरे शब्दों में—भाषा दो माध्यमों से हृदय को चमत्कृत या मोहित करती है—श्रुति (कान) के द्वारा और मनन (मन) के द्वारा। एक का विषय शब्द है, दूसरे का अर्थ। अतः सुन्दरता दोनों में ही देखी जा सकती है अतः अलंकार की दो कोटियाँ हो सकती हैं।

(क) शब्द—सौन्दर्य के साधक शब्दालंकार।

(ख) अर्थ—सौन्दर्य के साधक अर्थालंकार।

जहाँ दोनों का प्रभुत्त्व विधान हो वहाँ उभयालंकार समझिए।

————

२—शब्द-सौन्दर्य : शब्दालंकार

शब्दों की सौन्दर्य-योजना को शब्दालंकार कहा गया है। इसमें सारा चमत्कार 'शब्द' में ही निहित रहता है। उन्हें समानार्थी शब्दों से बदल देने पर चमत्कार नष्ट हो जाता है। शब्द का अर्थ 'नाद' भी है और 'वर्ण-समूह' भी। अतः शब्द-सौन्दर्य के कई साधन हो सकते हैं।

(क) वर्ण-योजना

१—एक वर्ण की एक बार योजना

यथा, मुरली मनोहर; कविता-कलाप

२—एक वर्ण की अनेक बार योजना (आवृत्ति)

जैसे—अलि कुल कल कल कलित कमल फूला हो जैसे।

['ल' और 'क' कई बार आये हैं]

३—एक मुख-स्थान से बोले जाने वाले वर्णों की योजना।

तुलसिदास सीदत निसिदिन देखत तुम्हारि निठुराई।

(ख) पद (वर्ण-समूह)-योजना

अनेक वर्णों की उसी क्रम से आवृत्ति

जैसे—(i) 'मनरमा रमणी रमणीयता' में रमणी की एक बार आवृत्ति है।

(ii) 'तनिक भीरु कभी रुकते नहीं' में क-भी-रु, तथा 'भी-रु-क' की एक एक बार आवृत्ति है।

(iii) कनक कनक ते सौगुनी मादकता अधिकाय। में कनक क-न-क की आवृत्ति है।

(ग) शब्द-योजना

'शब्दों' का विशेष चयन भी सुन्दरता उत्पन्न करता है इस शब्द योजना के भी कई प्रकार हो सकते हैं:—

(१) एक ही शब्द की अनेक बार योजना

जैसे-(क) 'नहिं धन धन है परम धन तोषहि कहहिं प्रवीन।'

[यहाँ, धन कई बार आया है]

(ख) नहीं किसी का, नहीं किसी का, वह मेरा, वह मेरा।

[यहाँ 'नहीं किसी का' और 'वह मेरा' दो बार आये हैं]

(ग) 'हाय, हाय मैं लुट गई।'

[यहाँ हाय, हाय दुःखवाची शब्द की आवृत्ति है]

(घ) एक ही शब्द की भिन्न भिन्न अर्थों में उतनी ही बार प्रयोग।

जैसे सारंग ने साराँग गह्यो साराँग बोलो, आय।
जो साराँग मुख ते कहे साराँग निकस्यो जाय॥

[सारंग के भिन्न भिन्न स्थलों पर भिन्न भिन्न अर्थ है।

(ङ) एक ही शब्द के अनेक अर्थ लगना

जैसे—चरन धरत, चिन्ता करत, नींद न चाहत सोर।
सुवरन को ढूढ़त फिरत, कवि भावुक अरु चोर॥

[कवि 'भावुक' और 'चोर के साथ 'चरन', चिन्ता और 'सुवरन' के तीन तीन अर्थ हैं]

(च) दो भिन्न शब्दों से एक ही अर्थ का आभास होना।

जैसे-(१) पानी जल गया।

(२) अली भौर गूंजन लगे, होन लगे दल पात।

उपर्युक्त सभी उदाहरणों में यह उल्लेखनीय बात है कि रेखाँकित शब्दों के स्थान में उसी अर्थ वाले दूसरे शब्द रख देने पर भाषा की शोभा नष्ट हो जायगी और अलंकार न रहेगा, यही इस बात का प्रमाण है कि चमत्कार 'शब्द' में ही निहित था।

(२) शब्दों का रमणीय अर्थ : अर्थालङ्कार

शब्दों के अर्थ का सौन्दर्य-योजना अर्थालंकार है। शब्दालंकार में सौन्दर्य शब्द में निहित था, अर्थालंकार में सौन्दर्य शब्द के अर्थ में निहित होता है ? इसी अर्थ सौन्दर्य के कारण भाषा की आन्तरिक शोभा की सृष्टि होती है। शोभा कई प्रकार से आती है।

(१) समता-स्थापना के द्वारा।

(२) विषमता-विधान के द्वारा,

(३) माला-योजना के द्वारा,

(४) न्याय-नियोजन के द्वारा,

(५) व्यंग्य-(या गूढ़ार्थ) नियोग के द्वारा,

इसके कुछ उदाहरण दिये जाते हैं।

(१) समता-स्थापना—

क-जो घनीभूत पीड़ा थी मस्तक में स्मृति सी छाई।

ख-बाडव-ज्वाला सोती थी इस प्रणाय सिन्धु के तल में।

ग–विद्रुम सीपी–संपुट में मोती के दाने कैसे ?

(२) विषमता–विधान—

क–शून्य भीति पर चित्र रंग नहिं तनु बिनु लिखा चितेरे।

ख–इतना ही प्यासा रहता है जितना पीता जाता है।

ग–ज्यों ज्यों बूड़ै श्याम रंग त्यों त्यों उज्ज्वल होय।

(३) माला–योजना—

१ २ ३ १ २ ३
अमी हलाहल मद भरे श्वेत श्याम रतनार।

१ २ ३
जियत, मरत, झुकिझुकि परत, जिहिं चितवत इक बार।

(४) न्याय–नियोजन—

कनक कनक ते सौगुनी मादकता अधिकाय।
वा खाये बौरात जग, या पाये बौराय।

(५) व्यंग्य–विनियोग—

क–ललन चलन सुन पलन में अंसुवा झलके आय।
भई लाखन न सीखन हूँ झूठें ही जमुहाय।

ख–जल को गये लाखन हैं लरिका परिखौ पिय छांह घरीक ह्वै ठाढ़े।
पोंछि पसेउ बयार करौं अरु पायं पखारि हौं भूभुरि डाढ़े।

उपर्युक्त उदाहरण केवल एक-एक उदाहरण के लिए प्रस्तुत किये हैं। इन सब में जो शोभा या सुन्दरता है वह अर्थ की है। 'शब्द' की नहीं है। इसका प्रमाण यह है कि शब्दों को पर्यायवाची शब्दों से बदल देने पर अर्थ-सौन्दर्य नष्ट नहीं होगा।

३—शब्दालंकार

भाषा (अथवा काव्य) के शब्द-पक्ष का सौन्दर्य साधन करने वाले अलंकार 'शब्दालंकार' कहलाते हैं। 'शब्द' का मूल तत्व नाद या ध्वनि है। यह श्रुति का विषय है। नाद (ध्वनि) की शोभा का साधक अलंकार शब्दालंकार है।

शब्द और अर्थ दोनों भाषा के रूप हैं। शब्द वाह्य है—अर्थ आन्तरिक। अतः शब्दालंकार शब्द की वाह्य शोभा है।

शब्द के तीन रूप हैं

(१) 'वर्ण' या अक्षर (Letter) जैसे अ, लं, का, र, इत्यादि।

(२) 'पद' या निरर्थक वर्ण संघात (Syllable) जैसे आनन्द-वर्धन।

(३) 'शब्द' (सार्थक पद) (Word) जैसे कमल प्रतिभा आदि।

इस आधार पर शब्दालंकार में वर्ण, पद तथा शब्द का विचार किया जाता है—अर्थ का विचार गौण (अमुख्य) है।

शब्दालंकारों को तीन वर्गों में देखा जा सकता है—

(क) वर्णात्मक

(ख) पदात्मक

(ग) शब्दात्मक

वर्णात्मक (१) अनुप्रास (Alliteration)

अनुप्रास आवृत्ति वर्ण-व्यंजन की एक अनेक
सुधा स्रोत से प्रेम पात्र का करो आज अभिषेक।

'वर्ण' की आवृत्ति का नाम "अनुप्रास" है:—एक वर्ण का एक या अनेक बार आना आवृत्ति है। (नाद का संकेत है) इसलिए इसका सम्बन्ध श्रुति (कर्णेन्द्रिय) से ही है। एक ही वर्ण की आवृत्ति के कई प्रकार हो सकते हैं।

(१) एक (या अनेक) वर्ण की एक बार आवृत्ति, (छेक)
(२) एक (या अनेक) वर्ण की अनेक बार आवृत्ति, (वृत्ति)
(३) एक स्थान उच्चारित वर्णों की आवृत्ति। (श्रुति)

छेकानुप्रास:—"एक या अनेक वर्णों की एक बार आवृत्ति"

एक वर्ण की एक बार आवृत्ति (Repetition) का नाम 'छेकानुप्रास' है। (सम्भवतः एक वर्ण को दो बार ही लाना छेक (चतुर) व्यक्ति का काम हो इसलिए इसका नाम छेकानुप्रास पड़ा)। इस अलंकार में एक ही वर्ण को (चाहे वह स्वस्वर हो अस्वर) उसी क्रम से दुहराना पड़ता है।

जैसे—कानन कठिन भयंकर भारी।
घोर घाम हिम बारि बयारी। (रामचरित मानस)

यहाँ 'कानन' 'कठिन' में 'क' की 'भयंकर' 'भारी' में 'भ' की, 'घोर' 'घाम' में 'घ' की और 'बारि' 'बयारी' में 'ब' की आवृत्ति हुई है। ये आवृत्त होने वाले वर्ण शब्द के आद्य-वर्ण

१—अनुप्रासः शब्दसाम्यम वैषम्येऽपि स्वरस्य 'यत्।'—स्वर की विषमता रहने पर भी शब्द (पद पदांश आदि) साम्य (सादृश्य) 'अनुप्रास कहते हैं।

२—रस आदि के अनुगामी, प्रकृष्ट (पास-पास) आस (न्यास) को अनुप्रास कहना ही चाहिए।

भी हो सकते हैं और अन्त्य भी अन्य कवि आद्य तथा अन्त्य दोनों भी । †

उदाहरण

(१) राधा के वर बैन सुनि, चीनी चकित सुभाय ।
दाख दुखी मिसरी मुरी, सुधा रही सकुचाय ।।

(२ केकि किरीट पीत पट (भूषित रज रूषित) लट वाला । (द्वापर)

(३) भोग रोग सम भूषम भारू ।
जम जातना सरित संसारू ।।

(४) इन्द्र जिमि जम पर, वाड़व सुअंम पर ।
रावण सदंभ पर रघुकुल राज है ।।

मन्द मन्द चलि अलिन को ।
करत गन्द मद अन्ध ।।
का बेरी वारी पवन ।
पावन परम सुछन्द ।। (कै० ला० पोद्दार)

(२) वृत्यनुप्रास :—"एक वर्ण का अनेक बार आवृत्ति"

एक ही वर्ण की अनेक बार आवृत्ति 'वृत्यनुप्रास' है । वर्ण विशिष्ट की योजना का नाम वृत्ति है । यह वर्णों की योजना

---

† काव्य दर्पण कर कहते हैं कि 'रस सर' में । रस में पहिले र 'आया है, सर' में र पीछे इसलिए यहाँ अनुप्रास नहीं होगा । यदि इस सर में अनुप्रास नहीं है तो आचार्यगण बतलाइये कि फिर इसमें अलंकार कौन सा है ? अलंकार होना तो अवश्य चाहिए क्योंकि वह श्रुति-सुखद है ।

काव्य में विशेष प्रकार का रस प्रभाव उत्पन्न करने के लिए की जाती हैं। ये वृत्तियाँ तीन हैं—(१) परुषा (२) उपनागिरका और (३) कोमला। गौड़, विदर्भ, पांचाल, प्रदेश की काव्य परिपाटी में प्रिय होने के कारण इन्हें क्रमशः गौड़ी वैदर्भी और पांचाली रीति भी कहा जाता है। (आचार्य वामन)

(अ) परुषा वृत्ति—गौड़ी-रीति

ओज गुण को व्यंजित करने वाले श्रुति-कर्कश (कठोर) वर्णों की योजना परुषावृत्ति कही जाती है। इसमें ट ठ ड ढ तथा द्वित्त वर्ण और संयुक्त वर्णों का समावेश होता है।

उदाहरण

(१) वक्रवक्र करि पुच्छ करि रुच्छ रिच्छ कपि गुच्छ।
सुभट ठट्ट, घन-घट्ट सम, मर्दहिं रच्छन तुच्छ।
[संयुक्त द्वित्त और टवर्ग की बहुलता]

(२) सब जाति फटी दुख की दुपटी कपटी न रहै जहं एक घटी।
निघटी रुचि मीचु घटी हू घटी जग जीव जतीन की छूटी तटी।
अघ ओघ की बेरी कटी बिकटी निघ प्रकटी गुरु ज्ञान गटी।
चहुं ओरन नाचति मुक्ति नटी गुन धूरजटी बन पंचवटी॥

—केशव : रामचन्द्रिका

(३) शुण्डों की चंचल बाहों में आज फणी फुकार उठे।
प्रत्यंचाओं में 'टङ्कारें' कण्ठों में हुंकार उठे॥

—जौहर : सुधीन्द्र

(४) डिगति उर्वि अति गुर्वि सर्व पब्बै समुद्र सर।
ब्याल बधिर तेहि काल विकल दिग पाल चराचर॥
दिग्गयन्द लरखरत परत दसकण्ठ मुक्ख भर।

—तुलसी : कवितावली

(ब) उपनागरिका वृत्ति—वैदर्भी-रीति

माधुर्य गुण को व्यंजित करने वाले वर्णों की योजना उपनागरिका वृत्ति कही जाती है। इसमें परुषावृत्ति के अक्षरों को छोड़कर अनुनासिक और मधुर (क च त प वर्ग) वर्णों का समावेश होता है।

(१) कंकन किंकिन नूपुर धुनि सुनि कहत लखन सन राम हृदय मुनि
—तुलसी

(२) मुक्ति मुकता को मोल माल ही कहा है जब।
मोहन लाला पै मन मानिक ही वारि चुकि॥
—उद्धव शतक

(३) चिबुक देख फिर चरण चूमने चला चित्त चिर चेरा।
—मै० गुप्त : द्वापर

(४) जीवन का क्षण, तन तन का कण, धरणी का तृण तृण बदला।
—जौहर

(५] खनक उठे लो कवच खनाखन झनक झनाझन शल झलमल।
—जौहर

(६) नटी का चित्तरंजन नृत्यशिंजन,
नूपुरों का स्वन रणन-अनुरणन मनमोहन।
—सुधीन्द्र 'प्रलयवीणा'

(७) नभ लाली चाली निसा चटकाली धुनि की न।
रति पाली आली अनत आय बन माली न॥
—बिहारी

(८) रस सिंगार मज्जन किये कन्जन भन्जन दैन।
अन्जन रन्जन हूँ बिना खन्जन गन्जन नैन॥

—बिहारी

कहीं-कहीं वृत्तियों का सम्मिश्रण भी हो सकता है—

१—कूलन में, केलि में, कछारन में, कुन्जन में।
क्यारिन में कालन कलीन किलकन्त है॥
कहै 'पद्माकर' परागन में पौन हू में।
पानन में, पीक में, पलासन पगंत है॥
द्वार में, दिसान में, दुनी में, देस देसन में।
देखौ दीप दीपन में दीपत दिगन्त है॥
बीथिन में, ब्रज में, नवेलिन में, बेलिन में।
बनन में, बागन में, बगरो बसन्त है॥

'—पद्माकर'

(स) कोमला वृत्ति

ओज और माधुर्य गुण को व्यञ्जित करने वाले वर्णों को छोड़कर शेष (य र ल व श ष स ह) वर्णों की योजना कोमला वृत्ति कही जाती है)

(१) स्यामल गौर किसोर बर सुन्दर सुखमा ऐन। [तुलसी]
['स' और 'र' की आवृत्तियाँ]

(१) सासु ससुर गुरु सजन सहाई। सुत सुन्दर सुसील सुखदाई।

—तुलसी

(२) विचित्रता साथ विराजिता रही वसन्त वासंतिकता वनान्त।

— हरिऔध : 'प्रिय प्रवास'

(ग) श्रुत्यनुप्रास : एक स्थानीय वर्णों की आवृत्ति

मुख के एक स्थान से उच्चरित होने वाले [एक स्थानीय] वर्णों की आवृत्ति श्रुत्यनुप्रास है। वर्णों के उच्चारण-स्थान इस प्रकार हैं—

कण्ठ	तालु	मूर्धा	दन्त	ओष्ठ	नासिका	कंठ-तालु	कंठ ओष्ठ	दन्त-ओष्ठ
अ	इ	ऋ	लृ	उ		ए	ओ	
आ	ई	ॠ	लॄ	ऊ		ऐ	औ	
क	च	ट	त	प				
ख	छ	ठ	थ	फ				
ग	ज	ड	द	ब				
घ	झ	ढ	ध	भ				
ङ	ञ	ण	न	म	ङ ञ ण न म			
ह	य	र	ल					
	श	ष	स					
कण्ठ्य वर्ण	तालव्य वर्ण	मूर्द्धन्य वर्ण	दन्त्य वर्ण	ओष्ठ्य वर्ण	अनुनासिक वर्ण	कंठ-तालव्य वर्ण	कण्ठोष्ठ्य	दन्तौष्ठ्य वर्ण

(१) तुलसिदास सहित निशिदिन देखत तुम्हारि निठुराई। —तुलसी [त ल स द न सब दन्त्य वर्ण हैं]

(२) ता दिन दान दीन्ह धन धरनी। [दन्त्य वर्णों (त, द, न, द, न, द, न, ध न, ध न) का ही बहुल प्रयोग]

विशेष

इस प्रकार छन्द के अन्त में (तुक के रूप में) आने वाले वर्ण-साम्य को 'अन्त्यानुप्रास' कहा है। और शब्द और अर्थ की आवृत्ति को 'लाटानुप्रास' कहा है, परन्तु वस्तुतः वह एक भिन्न अलंकार ही हो सकता है।

वि०—'अन्त्यानुप्रास' (तुक) छन्द के अन्तिम शब्द के अन्त में जो स्वर-सहित व्यंजनों का साम्य होता है उसे 'अन्त्यानुप्रास' या तुक (Rhyme) कहा जाता है।

(घ) ध्वन्यानुप्रास (Onamatopoeia)

[अंग्रेजी कविता में यह अलंकार प्रचलित है, उसी के प्रभाव से हिन्दी में भी माना गया है]

जहाँ वर्ण-ध्वनि उसके निहित अर्थ को प्रतिध्वनित करती है वहाँ ध्वन्यानुप्रास या 'ध्वन्यार्थ-व्यंजना' अलंकार होता है। रलमल, रणमण, टलमल, कल कल छल छल, मर मर, झर झर इसी प्रकार के शब्द हैं।

उदाहरण

(क)

१—कंकन किंकन नूपुर धुनि सुनि।
करत लखन सम राम हृदय गुनि। (रा० च० मा०)

[यहाँ कंकन किंकिन नूपुर इत्यादि में वर्ण-ध्वनि में इन आभूषणों का नाद ध्वनित होता सुनाई देता है।]

(ख)

२—कन कन कर कंकण प्रिय
किन किन रव किंकिणी
रणन रणन नूपुर। (निराला)

३—शत शत फेनोच्छ्वसित
स्फीत फूत्कार भयंकर। (पन्त)

यहाँ शत शत फेनोच्छ्वसित .... इत्यादि से फेन का ऊच्छ्वासित होना और फूत्कार सुनाई देता है।

(२) पदात्मक यमक (Pun)*

वर्ण—समूह (पद) की आवृत्ति—

वर्ण-समूह अर्थात् 'पद' की आवृत्ति 'यमक' है। ये दो पद या तो निरर्थक-निरर्थक होंगे, या निरर्थक-सार्थक या सार्थक-सार्थक।

'यमक' वर्णों की आवृत्ति नहीं, वर्ण-संघात या वर्ण-शृङ्खला अर्थात् 'पद' की आवृत्ति है। और चूंकि 'पद' सार्थक होने पर 'शब्द' भी होता है इसलिए वहाँ कभी-कभी शब्द की आवृत्ति होती है पर सदैव नहीं। इस कारण यमक तीन प्रकार का होता है—

(१) 'उत्तम' : निरर्थक-निरर्थक पद का यमक—

१—तनिक भीरु कभी रुकते नहीं। ['कभीरु' तथा 'भीरुक' की आवृत्ति]

२—निबल के बल केवल राम हैं। ['बल के' की आवृत्ति।

३—महा रंगीला तरु नारंगी बना। [हरिऔध : प्रियप्रवास]

इस प्रकार का उत्तम यमक होता है।

* Repetetion of a word Semition in 'Sound' but differ[ent] in 'sence'

(२) 'मध्यम' : निरर्थक-सार्थक पदों का यमक

१—मन रमा रमणी रमणीयता। मिल गई यदि वे विधि योग से।
पर जिसे न मिली कविता-सुधा। रसिकता सिकता सब है उसे।

[रमणी, रमणी का यमक ; पहला पद सार्थक, दूसरा निरर्थक, सिकता, सिकता का यमक : पहला पद निरर्थक, दूसरा सार्थक]

२—नव पलाश पलाश वना पुरी
स्फुट पराग-परागत पंकजा।

[पलाश (ढाक), पलाश (पत्ता), पराग (पुष्परज), परागत (युक्त)

३—मृदुलतान्त लतान्त विलोकते
ससुरभी सुरभी सुमनावली।

[यहाँ भी 'लतान्त' लतान्त—तथा ससुरभी सुरभी निरर्थक सार्थक पदों की आवृति है।

इस प्रकार का यमक मध्यम यमक होता है।

४—फागुन-गुन गा प्राणों की पिक कुहुकी यौवन मधुबन में।
(प्रभात फेरी : नरेन्द्र)

[यहाँ गुन गुन निरर्थक सार्थक पदों की आवृत्ति है।]

(३) हीन : सार्थक-निरर्थक पदों का यमक

सार्थक पदों के 'यमक' में प्रत्येक शब्द भिन्नार्थक होना चाहिए।

(क)

(१) तो पर वारौं उरवसी सुनु राधिके सुजान।
तू मोहन के उरवसी ह्वै उरवसी समान। [बिहारी]

[१. उरबसी–उर्वशी २. उरबसी–उर में बसी ३. उरबसी–वक्ष पर पहिनने का एक आभूषण]

(२) कनक कनक तें सौ गुनो मादकता अधिकाय।
या खाये बौरात जग, या पाये बौराय।

[१. कनक–सोना २. कनक–धतूरा]

(३) ऊँचे घोर मन्दर के अन्दर रहन वारी,
ऊँचे घोर मन्दर के अन्दर रहाती हैं।
कंदमूल भोग करैं कन्दमूल भोग करैं
तीन बेर खाती ते वे तीन बेर खाती हैं

भूषन शिथिल अंग भूषन शिथिल अंग
बिजन डुलातीं ते वे बिजन डुलाती हैं।
भूषन भनत शिवराज वीर तेरे त्रास
नगन जड़ाती ते वे नगन जड़ाती हैं।

—भूषण [शिवाबावनी]

(४) सारङ्ग ने सारङ्ग गह्यौ सारङ्ग बोल्यो आय।
जो सारंग मुख ते कहै सारँग निकस्यो जाय।

(५) वर जीते सर मैन के, ऐसे देखे मैं न।
हरिनी के नैनान ते, हरि, नीके ये नैन। [बिहारी]

(ख)

१—चन्द्रकान्त मणियाँ हटा–पत्थर मुझे न मार।
चन्द्रकान्त आवे प्रथम जो सब के उपहार॥

—साकेत, गुप्तजी

२—छाया को लेकर ही जग में इतने वाद विषाद बने।
कौन धर्म है वह कि जहां यह छाया ही अपवाद बने?
छाया पथ पर मनुज रथी यह जीवन रथ अपना लाया।
जगती के जीवन पर भी तो छायी छाया की छाया।
—(जौहर, सुधीन्द्र)

यहाँ 'छाया' की अनेक आवृत्तियाँ और अनेक अर्थ हैं—
१–प्रतिबिम्ब, प्रतिकृति, २–काँति ३–मृत्यु आदि।

३—विश्व भर सौरभ से भर जाय ["कामायनी" —प्रसाद]
यहाँ भर (पूर्ण तथा भरना) शब्द के दो अर्थ हैं।

४—बोल रसाल रसाल सजाते।
मधु बरसा मधु मास जगाते। ["प्रभात फेरी" —नरेन्द्र]
[रसाल (रसवाला), रसाल (आम)] मधु (मिठाई या शहद) मधु=(चैत्र बसन्त)]

लाट (३)

शब्द की आवृत्ति 'लाट' है।

अलंकार शास्त्रियों ने 'लाट' के विषय में कुछ भ्रान्तियाँ की हैं। सबसे पहिली बात तो यह है कि 'लाट' 'अनुप्रास' का एक भेद नहीं है, क्योंकि न तो इसमें 'वर्णसाम्य' है, और न वर्ण की आवृत्ति, इसमें सम्पूर्ण शब्द (अर्थात् सार्थक वर्ण-समुच्चय) की आवृत्ति होती है। श्री कन्हैयालाल पोद्दार ने 'अलंकार मंजरी' में लिखा है—शब्द और अर्थ दोनों की आवृत्ति में तात्पर्य की भिन्नता होने को शब्दानुप्रास (लाटानुप्रास) कहते हैं। परन्तु यदि इस अनुप्रास का एक भेद मानेंगे

तो यमक को भी मानना होगा । इसलिए लाट को एक स्वतन्त्र अलङ्कार मानना ही समीचीन है। इसे लाटानुप्रास कहना एक चिर-पोषित भ्रान्ति है ।

शब्द की आवृत्ति के साथ-साथ इसमें अर्थ की भी आवृत्ति होती है, परन्तु अन्वय अनुरोध से उसकी उपयुक्तता संगत हो जाती है। यदि हम कहें कि 'पानी वाला पानी नहीं लाया ।' तो यहाँ 'लाट' है। पानी शब्द की आवृत्ति उसी अर्थ में यहां हुई है, परन्तु यह पुनरुक्ति दोष नहीं है वरन् अन्वय के आग्रह से 'पानी' का दो बार आना संगत था ।

अन्य उदाहरण

१—नृप के कृपा कटाक्ष से होते धनी गरीब।
नप के क्रोधावेश से होते धनी गरीब। —सुरेश

यहाँ भी नृप, के, से, होते, धनी गरीब शब्दों की आवृत्ति उसी अर्थ में हुई है, परन्तु ठीक अन्वय करने पर इनकी संगति प्रमाणित हो जाती है।

२—धन्य सूर तुलसी केशव का तुमने किया पठन पाठ न।
शोर सूर तुलसी केशव का तुमने किया पठन पाठ न।

यहाँ भी अन्वय के कारण शब्दों की आवृत्ति संगत हो जाती है ।

३—जब दया वाले बने न दया दिखा ।
तब दया का गान क्या करते रहे ? —हरिऔध

४—आंख ऊंची न कर सके जब तो
आंख ऊंची भला रहे कैसे ? —हरिऔध

'ख' '६'

१—नाहि धन धन है परम धन तोषहिं कहहिं प्रवीन
रहिमन पानी राखिये बिन पानी सब सून।

२—काल करत कलिकाल में नहि तुरकन का काल।

[शिव राज भूषण—भूषण]

३—पराधीन जो जन नहीं स्वर्ग नरक ता हेत।
पराधीन जो जन नहीं स्वर्ग नरक ता हेत।

[वियोगी हरि : वीर सतसई]

४—तीरथ व्रत साधन कहा, जो निसदिन हरि गान।
तीरथ व्रत साधन कहा बिन निस दिन हरि गान।

५—राम भजन जो करत, नहिं भव बन्धन भव ताहि।
राम भजन जो करत नहिं भव बन्धन भय नाहि।

(४) श्लेष (शब्दार्थात्मक)

अनेकार्थक शब्द का प्रयोग

शब्द में कई बार अनेक अर्थ जुड़े रहते हैं। ऐसे शब्दों को श्लिष्ट कहा जाता है। 'श्लिष्ट' का शाब्दिक अर्थ है 'चिपका हुआ' है। प्रत्येक श्लिष्ट शब्द में अनेक (एक से अधिक) अर्थ चिपके हुए रहते हैं। जहां जहां शब्द में अनेक अर्थ सिद्ध हो वहाँ श्लेष होता है † निम्न उदाहरणों में श्लेष है।

१—कमला थिर न रहीम कहि यह जानत सब कोय।
पुरुष पुरातन की बधू क्यों न चँचला होय॥

—'रहीम'

† एक शब्द में हों जहां अर्थ कई श्लेष।

—'कमला' (लक्ष्मी, संपत्ति) कभी स्थिर नहीं रहती। कैसे रहै ? वह 'पुरातन पुरुष'—(बूढ़े पुरुष विष्णु) की जो वधू ठहरी।

२—अजौं तरयौना ही रह्यो श्रुति सेवत इक रँग।
नाक—बास बेसर लह्यो बसि मुकतन के संग॥
—बिहारी

तरयौना (कर्ण फूल) श्रुति (वेद और कर्ण) की सेवन करके भी 'तरा नहीं' परन्तु बेसर (नथ नीच पुरुष) ने 'मुकतन' (मुक्त पुरुष और मोती) का सत्संग करके नाक (स्वर्ग, नासिका) का वास पा लिया)

कभी कभी शब्द को भंग करके दूसरा अर्थ किया जाता है।

३—चिर जीवौ जोरी जुरै क्यों न सनेह गम्भीर।
को घटि, ये वृषभानुजा वे हलधर के बीर॥ —बिहारी

वृषभानुजा—(१) वृषभानु + जा (२) वृषभ + अनुजा

—राधा वृषभ बैल की अनुजा ठहरी और कृष्क भी हलधर (१—बैल २= वलराम) के बीर (भाई) हैं—तब दोनों की जोड़ी चिरञ्जीवी क्यों न होगी ?

४—तन्त्री नाद, कबित्त रस, सरस राग, रति-रंग।
अन बूड़े बूड़े, तरे—जे बूड़े सब अंग॥ —बिहारी

—वीणा का नाद, काव्य का रस, संगीत का राग और प्रेम का रंग, इनमें जो डूबा नहीं मरा नहीं हुआ। वह डूब गया (उसका जीवन व्यर्थ गया) और जो सर्वांग रूप से डूब गया (भान हो गया) वह तर गया (जीवन-सागर के पार गया।)

ख

६—उस रुदन्ती विरहिणी के रुदन—रस के लेश से।
और पाकर ताप उसके प्रिय विरह-विशेष से॥
वर्ण वर्ण सदैव जिनके हों विभूषण कर्ण के।
क्यों न बनते कवि जनों के ताम्रपत्र सुवर्ण के॥
—मैथिलीशरण गुप्त, साकेत

७—प्राण में है लाल—सा प्रिय।
कौन अब मुझ सा धनी है। —सुधीन्द्र

यहाँ 'लाल-सा' शब्द श्लिष्ट है। इसके दो अर्थ हैं—(१) 'लाल' (रत्न) के समान और (२) लालसा (इच्छा)
दोनों अर्थ यहाँ लगते हैं।

८—नव पल्लव नव सुमन खिल उठे।
नव मधु नव सौरभ छाया॥
—सोहनलाल द्विवेदी

'सुमन' शब्द श्लिष्ट है—फूल और सुन्दर मन।

९—तुम्हारी पी मुख वास तरंग।
आज बौरे भौंरे सहकार॥
—सुमित्रानन्द पन्त

यहाँ बौरे के दो अर्थ, पागल और बौर पाये हुये भ्रमर और आम दोनों के साथ लगते हैं।

(५) पुनरुक्ति प्रकाश [TAUTOLOGY]

१—भाव रुचिरता के लिए वह पुनरुक्ति प्रकाश।
होगा—होगा अब मिलन होगा विरह विनाश।

भाव को अधिक स्पष्ट करने के लिए जहाँ शब्दों की

पुनरुक्ति की जाती है, वहां 'पुनरुक्ति-प्रकाश' अलंकार होता है।

इसमें शब्दों की दो या तीन बार पुनरुक्ति कथन में सौन्दर्य लाने के उद्देश्य से या अधिक प्रभावपूर्ण करने के लिए ही की जाती है।

उदाहरण

१—हमको लिख्यो है कहा, हमको लिख्यो है कहा,
हमको लिख्यो है कहा, कहन सबै लगीं
—उद्धवशतक : रत्नाकर

२—द्वारिका जाहूजू, द्वारिका जाहूजू,
आठहू याम यहै रटठानी।
—सुदामाचरित : नरोत्तमदास

३—मधूमास मैं दासजू बीस बिसै मनमोहन आइहैं आइहैं आइहैं।
उजरे इत भौनन को सजनी सुखपुंजन छाइहैं छाइहैं छाइहैं।
अब तेरी सो ऐरी न संकए कैंक विथा सब जाइहैं जाइहैं जाइहैं
घनश्याम-प्रभा लखि कै सखियां अखियां सुख पाइहैं पाइहैं पाइहैं
—भिखारी दास

४—रामजपु, रामजपु, रामजपु, बावरे ! [तुलसी]

'ख'

१—धीरे धीरे दिन कर कढ़े तामसी रात बीती।
लोनी लोनी सकल लतिका वायु में मन्द डोलेगी।
प्यारी प्यारी ललित लहरें भानुजा में विराजीं,
मीठे मीठे विहगरव भी काम में आ समाये।
—प्रिय प्रवास : हरिऔध

२—पुनः पुनः प्यार दिखा—दिखा उसे
फिरा फिरा हाथ मराल बाल पै।
बँधा बँधा धैर्य स्वकीय दृष्टि से
सुना सुना श्री धन बोलने लगे —सिद्धार्थ [अनुप]

३—नहीं किसी का, नहीं किसी का, वह मेरा, वह मेरा।
(द्वापर : गुप्त)

४—हृदय रो अपने दुख का भार,
हृदय, रो उनका है अधिकार,
हृदय रो, यह जड़ स्वेच्छाचार।
(पल्लव : पन्त)

५—आज कितनी सदियों के बाद—
देवि कितनी सदियों के बाद
(मधुकण : भगवतीचरण वर्मा)

टिप्पणी

लाट में शब्द की पुनरुक्ति अलग-अलग शब्दों के साथ अन्वित करने के लिए की जाती है, परन्तु 'पुनरुक्ति प्रकाश' में कथन में प्रभाव या सौन्दर्य वृद्धि के लिए की जाती है—इसमें शब्द प्रायः साथ-साथ ही आते हैं। जैसे उछल-उछल, हिल-हिल, प्यारी-प्यारी आदि।

(६) वीप्सा

"मनोवेगव्यंजक "शब्दों का पुनर्कथन 'वीप्सालंकार'।"

श्रद्धा, घृणा, क्रोध, दया, विस्मय आदि मनोवेगों को व्यक्त करने के लिए जहाँ शब्दों (प्रायः विस्मयादि

बोधक) की आवृत्ति होती है, वहाँ 'वीप्सा' अलंकार होता है।

उदाहरण

१—राम ! राम !! तू भी कैसा हत्यारा !
हाय ! हाय !! तूने भाई को मारा !
छिः छिः छिः जन, तूने पाप कमाया !
धर्म ! धर्म ! तू ने यह प्रलय मचाया !
(सुधीन्द्र)

यहाँ 'राम', 'हाय', 'छिः', धर्म' शब्दों की आवृति से घृणा आदि मनोवेग की व्यंजना की गई है।

२—बलिहारी बलिहारी जय जय गिरिधारी गोपाल को।
(द्वापर : गुप्त)

'पुनरुक्ति प्रकाश' और 'वीप्सा' में अन्तर

आचार्य भगवानदीन, आचार्य रामदहिन मिश्र आदि ने कहीं-कहीं दोनों में भ्रांति की है। वस्तुतः जहाँ स्वयं उस शब्द में (जो पुनरुक्त हुआ हो) किसी तीव्र मनोवेग का भाव छिपा हो तब तो 'वीप्सा' होगी—अन्यथा साधारण शब्द या वाक्यांश की पुनरुक्ति में 'पुनरुक्ति प्रकाश' ही समझना चाहिए।

उदाहरणार्थ

राम जप राम जप राम जप बावरे में 'वीप्सा' नहीं इसी प्रकार जियो, जियो, बेटा आओ (साकेत) में भी वीप्सा नहीं है।

पुनुरुक्तिपदाभास—

जिस उक्ति में विभिन्न अर्थ वाले ऐसे शब्द प्रयुक्त हों जो पर्यायवाची और एक सा अर्थ देते हुये दिखाई दें—परन्तु यथार्थ में कुछ दूसरा ही अर्थ निकले वहां पुनुरुक्तिपदाभास अलंकार होता है।

प्रस्तुत उदाहरण में 'समय' और काल पर्याय वाची हैं पर यहाँ पर काल का अर्थ ग्रन्थ लिया गया है।

३—अरिन के दल सैन संमर में समुहाने।
टूक टूक सकल कै डारे घमसान में॥
दरबार रूरो महानद परवाह पूरो।
बहत है हाथिन के मद जल दान में॥
भूषन भनत महाबाहु भौंसिला भुवाल।
सूर रवि कैसो तेज तीखन कृपान में॥
माल मकरन्द कुलचन्द कलनिधि तेरो।
सरजा शिवाजो जस जगत जहान में। (भूषण)

(ख)

१—समय जा रहा है और काल आ रहा। (गुप्त)

[समय=समय, काल=मृत्यु]

२—नीलाम्बर परिधान हरित पट पर सुन्दर है।

[यहाँ अम्बर, परिधान, पट के आकाश, उत्तरीय, वस्त्र इस प्रकार अर्थ है।]

स्मरणीय है कि लाट-यमक में आवृत्ति होती है, पुनरुक्ति प्रकाश तथा वीप्सा में पुनरुक्ति। किन्तु पुनरुक्ति पदाभास में वस्तुत: पुनरुक्ति होती नहीं, प्रतीत होती है—जान पड़ती है।

(८) वक्रोक्ति (Irony)

काकुश्लेष से जहाँ उक्ति का भिन्न वक्र आशय—'वक्रोक्ति'

जहाँ 'काकु' (कण्ठध्वनि) या श्लेष के द्वारा किसी की कही हुई बात का कोई दूसरा व्यक्ति उसके इच्छित अर्थ से भिन्न कोई वक्र अर्थ ग्रहण करे, वहाँ 'वक्रोक्ति' अलंकार होता है। इसके दो भेद हैं—

(क) काकु-वक्रोक्ति (ख) श्लेष वक्रोक्ति।

(क) काकु-वक्रोक्ति (कण्ठध्वनि से वक्र अर्थ)

उदाहरण

१—मैं सुन्दर हूँ।

२—जी, हाँ, आप बड़े 'सुन्दर' हैं!

—स्पष्ट है कि यहाँ पहले 'सुन्दर' से दूसरे 'सुन्दर' का, अर्थ दूसरा अर्थात् असुन्दर है। यह अर्थ वक्रता कण्ठध्वनि से ही आई है।

२—कह कपि धर्मसीलता तोरी।
हमहुँ सुनी कृत पर-तिय चोरी॥
कह कपि तब गुन गाहकताई।
सत्य पवनसुत मोहिं सुनाई॥
कह अंगद सलज्ज जग माहीं।
रावन तोहिं समान कोउ नाहीं॥
सो भुज बल राख्यो उर घाली।
जीतेउ सहसबाहु बलि बाली॥

(रामचरितमानस : तुलसीदास)

—यहाँ अंगद के शब्दों में कण्ठध्वनि से ही 'धर्मशीलता', गुणग्राहकता, सलज्ज शब्दों के विपरीत अर्थ लक्षित होते हैं।

(ख)

१—बड़े बड़े धर्मध्वज रहते नगर नगर में—
ध्वजा धर्म की उड़ती रहती है घर घर में।
'काकु' से धर्मध्वज का वक्र अर्थ होगा।

२—शक्ति रूप नारी ? जग जिससे कांपे थर थर
और सबल यह पुरुष कि जो हैं इतना कातर। (विभाजन)

(ख) श्लेष बक्रोक्ति (श्लेष से वक्र अर्थ)

उदाहरण

(क)

१—खोलो जू किवार, तुम को हो एती बार ।
हरि नाम है हमारो, बसो कानन पहार में ॥
हौं तो प्यारी माधव, तो कोकिला के माथे भाग ।
'मोहन' हौं प्यारी, परो मन्त्र-अभिचार में ॥
रागी हौं रंगीली, तौ जु जाहु काहू दाता पास ।
भोगी हौं छबीली, जाय बसौ जू पतार में ॥
नायक हौं नागरी, तौ हाकौं कहूँ हाड़ो जाय ।
हौं तो घनश्याम बरसो जु काहू खार में ॥

राधा-कृष्ण के इस परिहास में श्लेष वक्रोक्ति का ही आश्रय लिया गया है। किवाड़ खुलवाने के लिए कृष्ण के द्वारा बताये गये—हरि, माधव, मोहन, रागी, भोगी, नायक

घनश्याम आदि अपने नामों का अर्थ राधा ने क्रमशः बन्दर बैशाख (बसन्त), जादूगर, गायक, सर्प, बनजारा और काला बादल लगाये हैं।

(ख)

१—एक कबूतर देख हाथ में पूछा कहां अपर है ?
उसने कहा अपर कैसा है ? उड़ है गया सपर है !

—नूरजहां (गुरुभक्तसिंह)

यहाँ सलीम और मेहरुन्निसा का परिहास है। सलीम ने पूछा था अपर (दूसरा) कबूतर कहां है ? मेहरुन्निसा ने कहा—यह 'पर-हीन' नहीं हैं, सपर है ! और उसे उड़ा दिया।

श्लेष वक्रोक्ति पदों को भंग करके भी की जाती हैं जैसे—

'गौरवशालिनि, प्यारी सदा ।
तुमही हमको अति ही प्रिय हो ॥'

'हौं न गऊ अवशा हू नहीं,
अलिनी मुहि काहे बतावत हो ?

महादेव ने पार्वती को 'गौरवशालिनी' कहा था परन्तु (परिहास में) पार्वती ने उस शब्द को भंग करके,-गौ अवशा, 'अलिनी' तीन शब्द बनाकर—वक्र आशय से उत्तर दिया कि न तो मैं गायक हूँ, न स्वच्छन्द हूँ, न भ्रमरी हूँ।

(९) भाषा समक

अनेक भाषाओं का समन्वय या समावेश जब होता हैं, तो वहाँ 'भाषा रूपक' अलंकार माना गया है।

इसमें चमत्कार-प्रदर्शन की दृष्टि से अन्य भाषाओं की शब्दावली का प्रयोग किया जाता है। इस अलंकार का प्रचार अब प्रायः नहीं है।

उदाहरण

(संस्कृत, हिन्दी और फारसी)

द्रष्टुं तत्र विचित्रतां सुमनसां मैं था गया बाग में।
काचित्तत्र कुरंगशावनयना गुल तोड़ती थी खड़ी॥
उन्नद् भ्रू धनुषी कटा था विशिखैः घयिल किया था मुझे।
तत्सीदामि सदैव मोह-जलधौ हैदर गुजारे शुकर॥ (रहीम)

(फारसी-हिन्दी)

जिहाले मिस्कीं मकुन तगाफुल दुराये नैना, छिपाये बतियाँ।
दराज चूं जुल्फ उम्र कोता न लेहु काहे लगाय छतियाँ॥
सखी पिया को जो मैं न देखूँ तो कैसे काटूं अंधेरी रतियाँ॥
(खुसरो)

(हिन्दी-अंग्रेजी)

अच्छर चार पढ़े अंग्रेजी बनि गये अफलातून।
मिलहि मो तोहे कैसे जैकर फेयर फेंस लाइक द मून। (प्रेमघन)

(१०) प्रहेलिका (Puzzle)

प्रश्न-निहित उत्तर जहाँ 'प्रहेलिका'लंकार।

इस अलंकार में वाक्य, प्रश्न या पहेली होती है किन्तु उसका उत्तर उसी के अन्तर्गत किसी शब्द या उसके अर्थ

में—अन्तर्हित रहता है। अमीर खुसरो ने प्रायः ऐसी पहेलियाँ लिखी हैं।

उदाहरण

१—(शब्दगत)

बारे से वह सबको भावै।
बढ़ा हुआ कुछ काम न आवै॥
मैं कह दिया उसका नाम।
अर्थ करो या छांड़ो ग्राम॥

—खुसरो

यहां 'दिया' या दीपक पहेली का उत्तर शब्द में ही निहित है।

२—भूसन का हरि अंग? कोह भरौतिय का करै?
कातें होय अनंग? को मरालहित? —मानसर।

यहां क्रमशः चार प्रश्न हैं जिनके क्रमशः मा, मान, मानस और 'मानसर' उत्तर 'मानसर' में निकलते हैं। प्रश्न हैं—

(१) हरि के अंग का भूषण क्या है? (२) क्रोध भरी स्त्री क्या करती है? (३) काम किससे उत्पन्न होता है? और (४) हंस का हितू क्या है?

२—(अर्थगत)

आदि कटे तें सबको पालै।
मध्य कटे तें सबको सालै॥
अन्त कटे तें सबको मीठा।
सो खुसरो मैं आंखों दीठो॥ —खुसरो

यहाँ 'काजल' उत्तर 'आँखों' दीठा (आंखों में दिखाई दिया) इस अर्थ में निहित है।

३—दृष्टिकूटक—

'दृष्टिकूटक' काव्य भी 'प्रहेलिका' अलंकार से है। इसका अर्थ है दृष्टि से छल करने वाला। इसमें शब्दों का ऐसा चयन होता है कि बाह्य दृष्टि से देखने से अर्थ प्रतीत नहीं होता—परन्तु मस्तिष्क पचाने पर अर्थ की संगति जानी जा सकती है। यह उच्चकोटि की कला नहीं किन्तु महाकवि सूरदास जैसों ने दृष्टिकूट पदों की रचना की है। उदाहरण-स्वरूप उन्हीं का एक पद नीचे दिया जाता है—

उदाहरण

कहत किन परदेशी की बात?
मन्दिर-अरध[1] अवधि हरि कहि गये
हरि-अहार[2] चलि जात।
अजया भख[3] अनुसारत नाहीं,
कैसे के दिवस सिरात।
ससि-रिपु[4] बरष, भानु-रिपु[5] जुग सम
हर रिपु[6] किये फिरै घात।
मघ[7] पंचम लै गये श्याम घन
ताते जिय अकुलात।

१—पक्ष (१५ दिन)। २—माँस=मास। ३—पाती=पत्र। ४—दिन। ५—रात्रि। ६—कामदेव। ७—मघानक्षत्र से पांचवा नक्षत्र=चित्रा=चित्त।

बेद नखत ग्रह जोरि अरध करि ?
को बरजै हम खात ?
'सूरदास' प्रभु तुमहिं मिलन को,
कर मीजत पछितात।
—सूरदास

अर्थ—उन परदेशी की बात क्यों कहते हो ? वे तो एक पक्ष की अवधि देकर गये थे सो मास बीत गया। पाती वे भेजते नहीं फिर दिन कैसे कटें ? दिन हमें वर्ष के समान और रात युग के समान लगती है तिस पर कामदेव हमारी घात में रहता है। श्याम हमारे चित्त को (अपने साथ) लेगये हैं, इसी से जी व्याकुल है। अब हमें विष खाने से कौन रोकेगा ? हे प्रभु ! हम तो तुमसे मिलने के लिए हाथ मलमल कर पछता रही हैं।

चित्र

'चित्र' हेतु विन्यास वर्ण का वह चित्रालङ्कार।

जिस छन्द रचना में वर्ण योजना इस कौशल से की हो कि जिससे (कमल, चक्र, खडग, छत्र, वृत्त, ध्वजा, कपाट, रथ आदि) चित्रों के आकार रूप में आलेखित किया जा सके—उसे चित्र--अलंकार या चित्र काव्य कहा गया है)

इसके अनेक प्रकार हैं—नीचे चक्र बद्ध, चित्र काव्य का उदाहरण दिया जाता है—

१—वेद = ४ + नखत (नक्षत्र) = २७ + ग्रह = ९ = ४० का आधा २० बीस या 'विष'।

(१) छन्द

सौलन माप उठो गढ़ सोहत
तीरहि चामल कूल खसे ।
सेखल फूल मचाहिं अनीतिन
कोप दहैं बहु बारों कसे ।
सेकसें बाहु बहैं दुख टारन
लागत मोहिं अजा अरि से ।
सेरि अजा अहि मोर मिले
सो सुरेस हुं सों उपमा न लसे ।

—द्ररुदत्त मिश्र सुरेश
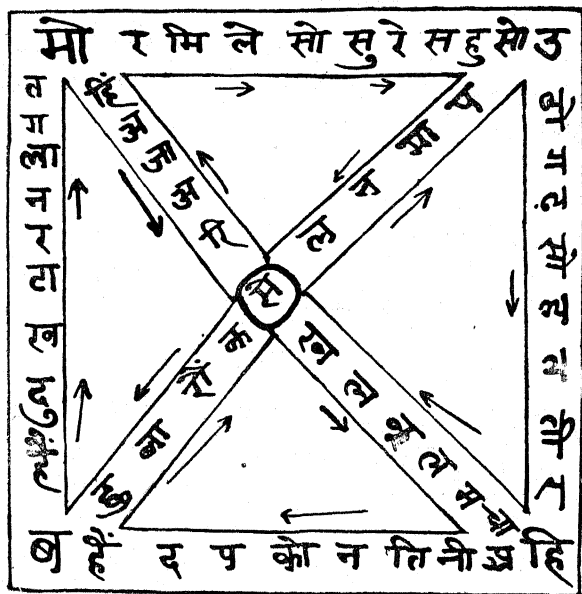
१ मोरपखा	२ खनमाल	३ विराजत	४ वेनु बजै	५ गुनभेव	६ सुपर्सन
७ संगसखा	८ नंदलाल	९ सुभ्राजत	१० मोद सजै	११ यगसेव	१२ तुकर्सन
१३ दद्धि चखा	१४ करिख्याल	१५ हिलाजत	१६ पावत जै	१७ अतितेव	१८ तु हर्सन
१९ ध्यान रखा	२० छविजाल	२१ हिछाजत	२२ स्वाँत रजै	२३ बलदेव	२४ सुदर्सन

उक्त बन्ध चित्र में २४ सवैया बन सकते हैं किसी भी वर्ग से प्रारम्भ करके क्रमानुसार पढ़ने से एक-एक सवैया बन सकता है।

———

अर्थालंकार

१—"उपमा" (Simile)

उपमा का शाब्दिक अर्थ—समीप मानना—अर्थात् दो वस्तुओं में समानता पहिचानना।

जहां किसी प्रस्तुत (वर्णनीय वस्तु) की उसके किसी गुण (धर्म) के आधार पर अप्रस्तुत से समता दिखाई जाती है, वहाँ 'उपमा' होती है।

पुरुष सिंह के समान बलवान् हैं," में पुरुष की बल में सिंह से समता दिखाई गई है। इसलिए यहाँ 'उपमा' है।

'प्रस्तुत की अप्रस्तुत से समधर्माश्रित समता 'उपमा।'।

अङ्गरेजी में इसे Simile कहा जाता है।

१—'हरि—पद कोमल कमल से' (रा० च० मा०) 'तुलसी'।

२—जो घनीभूत पीड़ा थी मस्तक में स्मृति सी छाई।" (प्रसाद)

३—आज पावन से बरसते।

क्यों नयन ये ? (सुधीन्द्र)

उपमा

इन उदाहरणों में हम उपमा में चार अंग देखते है—

(१) प्रस्तुत या वर्णनीय वस्तु (जिसकी उपमा दी जाती है) : उपमेय

(२) अप्रस्तुत या अवर्णनीय वस्तु (जिससे उपमा दी जाती है) : उपमान

(३) उभयनिष्ट (दोनों में पाया जाने वाला) गुण:—साधारण धर्म

(४) उपमा (समता)-सूचक शब्द—वाचक

ऊपर के उदाहरणों में ये अंग इस प्रकार होंगे:—

उपमेय	उपमान	वाचक	साधारणधर्म
(१) हरिपद कोमल कमल से			
हरिपद	कमल	से	कोमल
(२) जो घनीभूत पीड़ा थी स्मृति सी छाई			
जो घनी भूत पीड़ा	स्मृति	सी	छाई
(३) आज पावस-से बरसते क्यों नयन ये ?			
नयन	पावस	से	बरसते

उपमा के दो भेद हैं—(१) पूर्णोपमा (२) लुप्तोपमा

(क) पूर्णोपमा (Complete simile)

जहाँ उपमा के चारों अंग (उपमेय, उपमान, वाचक और साधारणधर्म) विद्यमान हों, वहाँ पूर्णोपमा होती है।

उदाहरण

(१) उपमेय के अन्य नाम प्रस्तुत, प्रकृत, वर्ण्य, विषय और प्रासंगिक भी है।

(२) उपमान को अप्रस्तुत, अप्रकृत, अवर्ण्य, विषयी तथा अप्रासंगिक भी कहा जाता है।

(३) साधारणधर्म या लक्षण दोनों (उपमेय-उपमान) की समता का आधार होता है।

(४) वाचक उपमा सूचक शब्द है जैसे—सा (सी, से, सी) सम, समान, इव, त्यों, लौं, सरिस, सदृश, निभ, प्रतिम, उपमा (विद्युतोपम), ज्यों, जैसे, यथा, आदि।

सूचना

उपमा में सादृश्य या समता काल्पनिक (Imaginary) होती है यथार्थ नहीं, और वह काव्य गुण लाने के लिए ही दिखाई जाती है। 'यह व्यक्ति मेरे भाई के समान विद्वान हैं'—में उपमा नहीं होगी।

उदाहरण

(क)

(१) 'पीपर पोत सरिस मन डोला' —तुलसी

(२) ......

(ख)

(१) 'लघु तरिण हंसिनी सी सुन्दर
तिर रही खोल पालों के पर।' (पन्त 'नौका विहार')

(२) 'जीवन न दीन बने
प्रथम यौवन के मिलन-सा चिर नवीन बने।'
(रामकुमार वर्मा)

(३) 'तुम जिस ओर गये,
निकल पड़े हैं वहीं मार्ग नये,
दुर्गम दुरूह में से शङ्का-समाधान-सम'
(सियारामशरण 'बापू')

(४) 'शतभावों के विकच दलों से मण्डित एक प्रभात।
खिलीं प्रथम सौंदर्य पद्म सी तुम जग में नवजात॥'
(पन्त : अप्सरा)

उपर्युक्त उदाहरणों में उपमा के चारों अङ्गों का आकलन इस प्रकार होगा :—

	(१) उपमेय	(२) उपमान	(३) वाचक	(४) धर्म:
१	मन	पीपर पात	शरिस	डोला
२	जीवन	प्रथम यौवन के मिलन	सा	चिरनवीन,
३	मार्ग नये	शङ्का समाधान	सम	दुर्गम दुरूह में से निकल पड़े हैं
४	तुम (अप्सरा)	प्रथम सौन्दर्य पद्म सी	सी	खिली

(ख) लुप्तोपमा

जहाँ उपमा के एक अनेक अङ्ग लुप्त होते हैं, वहाँ 'लुप्तोपमा' होती है।

यह आठ नौ प्रकार की हो सकती है जैसे—

(१) उपमेयलुप्तोपमा (२) उपमानलुप्तोपमा (३) वाचकलुप्तोपमा (४) धर्मलुप्तोपमा (५) धर्मोपमानलुप्तोपमा (६) वाचकधर्मलुप्तोपमा आदि (७) वाचकोपमान लुप्तोपमा (८) वाचकोपमेय लुप्तोपमा (९) धर्म वाचकोपमानलुप्ता। आगे कुछ उदाहरण दिये जाते हैं—

(१) उपमेयलुप्ता

१. "नील-सरोरुह-श्याम, तरुत अरुन वारिज नयन।
करहु सो मम उर धाम, सदा छीर सागर-सयन।"

(तुलसी : रा० च० मा०)

२. "मुख-कमल समीप सजे थे, दो किसलय पुरइन के।"

(प्रसाद : आंसू)

['पुरइन के किसलय' 'उपमान का उपमेय ,दो श्रवण' लुप्त है]

३. "पड़ी थी बिजली-सी विकराल,
लपेटे थे धन जैसे बाल,
कौन छेड़े ये काले साँप
अवनिपति उठे अचानक कांप।" (साकेत : गुप्त)

यहाँ उपमेय केकैयी है, जो लुप्त है।

सूचना

श्री दीन जी ने अलंकार मंजूषा में जो उपमान का अस्तित्व न होना इसका लक्षण दिखाया है वह शुद्ध नहीं है। उपमान का संकेत होना तो आवश्यक है चाहे उसका कथन सही न हो अतः ये उदाहरण अशुद्ध है—

१. 'बांके से चंचल नयन जग काहू के हैं न'

२. 'सुन्दर नन्दकिशोर सो जग में मिलें न और।'

---

१. वर्ण्योपमानधर्माणां उपमोवाचकस्य च।
एक द्विश्यनुपादानैर्भिन्ना लुप्तोपमाष्ट धा। (चन्द्रालोक)

इसी प्रकार आचार्य रामदहिन मिश्र का यह उदाहरण भी ठीक नहीं है—

तीन लोक झांकी ऐसी दूसरी न झाँकी जैसी
'झांकी हम झांकी जैसी युगल किशोर की' (पंज नेश)

(३) वाचक लुप्ता—

(१) नील सरोरुह-श्याम तरुण अरुण बारिज नयन।" (तुलसी)

(२) "कुसुम-कोमल बालक जो बचा।" (हरि औध)

(३) "शलभ-चञ्चल मेरे मन प्राण।" (पन्त : भावी पत्नी के प्रति)

(४) "छोड़ गगन में चँचल उडुगण चरण चिह्न लघुभार,
नागदन्तक्षत इन्द्र धनुसपुल करती हो नित पार" (पन्त—अप्सरा)

(४) धर्म लुप्ता—

(१) "भोग-रोग सम, भूषण भारू।
जम जातना सरिस संसारू॥" (रा० च० मा०)

(२) "जीवन की गोधूली में।
कौतूहल-से तुम आये॥" (प्रसाद)

(३) "हीरे-सा हृदय हमारा।
कुचला शिरीष कोमल ने॥" (प्रसाद)

(४) "वह नव नलिनी-से नैनवाला कहाँ है ?"
(हरि औध : प्रिय प्रवास)

(५) उन क्षत्रिय वीरों के रण का प्रलय एक उपमान बना !
(सुधीन्द्र : जौहर)

(६) "इस उत्पल-से काय में हाय उपल-से प्राण।"
(मैथिलीशरण : साकेत)

(७) "पीले पत्तों की शय्या पर तुम विरक्ति-सी मूर्च्छासी ।" (पन्त)

(८) विद्रुम औ मरकत की छाया, सोने चांदी का सूर्यातप ।

हिम परिमल की रेशमी वायु, शतर नछाय खग-चित्रित नभ ।"

(यहाँ की' उपमा का वाचक है, परन्तु धर्म रक्तिम्, हरित्, पीत, श्वेत आदि लुप्त हैं रेशमी वायु में भी 'कोमल' धर्म छिपा है ।)

वाचक धर्मोपमेय लुप्ता ।

"मन गयन्द हँस तुम सोंहै कहा दुरावति हम सौं
केहरि कनक कलश अमृत के कैसे दुरे दुरावति ।
विद्रुम हेम वज्र के किनुका नाहिंन हमें सुनावति ।।"

—(सूरदास)

यहाँ गयन्द (हाथी), हंस, केहरी (सिंह) कनक-कलश आदि उपमान क्रमशः जंघा, गति, कटि उरोज, अधर, दाँत आदि उपमेयों के हैं—जो लुप्त हैं साथ ही वाचक तथा धर्म भी कथित नहीं हैं ।

वाचक धर्मोपमान लुप्ता

कुछ आचार्यों ने उपमान की सत्ता न होने को आधार मानकर वाचकधर्मोपमेय लुप्ता की स्थापना की है परन्तु यह भूल है । उपमेय होना चाहिए चाहे कथित न हो—यह ध्यान देने की बात है । इस प्रकार 'अलङ्कार मंजूषा' (दीन) में दिये इसके सभी उदाहरण समीचीन नहीं हैं ।

वाचक धर्म लुप्ता

(१) 'शशि-मुख से दीपित मृदु करतल ।' (पन्त : नौका विहार)

(२) 'बिजली-माला पहने फिर

मुसक्याता था आंगन में।' (प्रसाद : आंसू)

(३) 'शशिमुख पर घूँघट डाले'

(४) 'विद्रुम और मरकत की छाया,

सोने-चांदी का सूर्यातप,'

[यहाँ प्रथम पंक्ति में लाल और नीला | धर्म] पन्त : अलमोड़े
द्वितीय पंक्ति में पीला और श्वेत | धर्म] का बसन्त
तथा वाचक लुप्त हैं]

(६) 'बोली वीणावाणी में "अतिथिदेव"...

(बारू बदन्ता: सोहनलाल)

(ख)

(१) विधु वदनी मृगसावक लोचनि (तुलसी)

(२) के हरि कन्धर चारु जनेऊ (तुलसी)

(१) अटा उदय हो तो भयो छविधर पूरनचन्द।
हौं बलि बलि अवलोकिये मन्मथ करन अनन्द।

(२) चढ़ो कदम पै कालिया, विषधर देखो आय।

(३) अरुन नयन उर बाहु विसाला।

(४) राम सरूप तुम्हार, वचन अगोचरन बुद्धि पर।

(५) ओहो ! आह रे

(६) क्यों दहाड़ रहे हो ? [वाचकोपमान लुप्ता]

(७) कुंजर-मनि कण्ठा कलित, उरन्ह तुलसिका माल।
वृषभ कन्ध, केहरि ध्वनि, वलनिधि वाहु विसाल॥

(८) प्रात का सोने का सँसार जला देती संध्या की ज्वाल। [पन्त]

(९) तुम्हारी आँखों का आकाश।

सरल आंखों का नीलाकाश

खोगया मेरा खग अनजान

मृगेदिपि, इसमें खग अनजाम।

उपमा के ही कुछ और उपभेद हैं :—

(क) वाक्यार्थोपमा

एक वाक्य की समान धर्म के (गुण) आधार पर दूसरे वाक्य से समता दिखाई जाती है, वहां वाक्यार्थोपमा होती है।

उदाहरण

(१) 'कुदित कुमुदिनी नाथ हुए प्राची में ऐसे।
सुधा-कलश रत्नाकर से उठता हो जैसे ॥" (प्रसाद : चित्रकूट में)

(२) "भूमि परत भा डाबर पानी।
जिमि जीवहिं माया लपटानी।" (तुलसी : रा० च० मा०)

(ख) समुच्चयोपमा

जहां उपमेय और उपमान में अनेक धर्मों के आधार पर उपमा स्थापित की जाती है वहाँ 'समुच्चयोपमा' होती है।

उदाहरण

(१) 'बहुवर्णा सहज प्रिया, तम गुनहरा प्रमान।
जगमारग-दरसावनी, सूरज-किरन समान ॥" (राम चन्द्रिका)

[यहाँ मुद्रिका की समता सूर्य किरण से की गई है और अनेक धर्म दिखाये गये हैं]

(२) मृदुल मुकुल सा मन्जु मनोहर शिशु का प्रादुर्भाव हुआ।"
—गो० श० सिंह

(३) "दिव्य सुखद सीतल रुचिर।
तव दर्शन विधु रूप ॥"

(ग) श्लेषसेमा

जहां श्लिष्ट शब्द में उपमेय-उपमान के धर्म द्वारा उपमा की गई हो वहाँ 'श्लेषोपमा' होती है। केशव ने ऐसी उपमाओं का प्रचुर प्रयोग किया है।

(२) हिम अंयुक प्रतिद्वन्द्वि अरु श्रीयुत सुरभि सुगन्ध।
पङ्कज सम तब बदन लखि है जैसे मधुप मदन्ध ॥

यहां मुख को रेखाँकित श्लेष धर्मों के आधार पर पकज से उपनित किया गया है।

(घ) रशनोपमा

रशना का अर्थ है—शृंखला या करधनी। जिस प्रकार शृंखला की कड़ियाँ एक दूसरे में गुम्फित रहती हैं उसी प्रकार कभी-कभी उपमा में भी उपमेय उपमान की कड़ियाँ गुम्फित होती जाती हैं।

जहाँ क्रमशः उपमेय उपमान बनता हुआ रशना (शृंखला) निर्माण करे, बहाँ 'रशलोपमा' होती है।

उदाहरण

(क)

(१) 'वंस सम बखत, बखत, सम ऊँचो मन।
मनस मकर, कर सम करी दान के ॥' (भषण)

(२) 'मुकुर सम विधु, विधु सरिस मुख।
मुख समान सरोज ॥'

(३) 'वन सी माधुरि मूरती-मूरति सी कल रीति।
कीरति लौं सब जगत में छाइ रही तब नीति ॥'

(४) 'मति-सी नति नति-सी विनति ।
विनती सी रति चारु ॥
रति-सी गति, गति सी भगति ।
तो में पवन कुमार ॥

(ख)

(१) स्वर्ग-सी सुखमय सुन्दर देह, देह-सा सुन्दर कोमल प्राण ।
प्राण-सा कोमल मधुमय प्रेम, प्रेम सा मादक चुम्पन दान ॥
(सुधीन्द्र)

(ङ) मालोपमा

जहाँ एक उपमेय की, एक धर्म या अनेक भिन्न धर्मों के कारण, अनेक उपमानों से समता दिखाई जाती है, वहाँ मालोपमा होती है।

" एकधर्म या भिन्न धर्म से बनती उपमा 'माला' "

एकधर्म मालोपमा

(१) 'कुन्द-इन्दु सम देह उमारमन करुणायतन ।'
(तुलसी रा० च० मा०)

देह की यहाँ कुन्द और उपमानों से एक ही धर्मगौरवता के कारण समता दिखाई गई है।

(२) 'कालिका-कृपान, मुन्ड माली को त्रिसूल से हैं ।
रामचन्द्र-बान फनमाली के जहर से ॥' (लछिराम)

(३) इन्द्र जिमि जंभ पर वाडव सुअम्भ पर ।
रावन सदम्भ पर रघुकुल राज है ॥

पौन बारिवाह पर, सम्भु रति नाह पर।
ज्यों सहस्रबाहु पर राम द्विजराज है॥
दावाद्रुम दण्ड पर, चीता मृगझुण्ड पर।
भूषन वितुंड पर जैसे मृगराज है॥
तेज तम अंस पर कन्ह जिमि कंस पर।
त्यो मलेच्छ वँस पर शेर शिवराज है।
तेज तम अंश पर कान्ह जिमि कंस पर,
त्यों मलेच्छ वंस पर शेर शिवराज है।"
(भूषन : शिवराज भूषण)

(४) "पीले पत्तों की शय्या पर तुम विरक्ति-सी मूर्च्छा-सी।
बिजन विपिन में कौन पड़ी हो विरह मलिन दुख विधुरा-सी॥"
(पन्त : छाया)

(५) छिपीं कोष में असिधाराएँ, ज्यों विद्युतमाला घन में।
नागिनियाँ अपने विवरों में, कुटिल भावनाएँ मन में॥ —जौहर

सूचना :—इसमें 'पूर्ण धर्मा' या 'लुप्त धर्मा' उपमायें हो सकती हैं।

भिन्न धर्म मालोपमा

(१) "कभी चौकड़ी भरते मृग-से
भू पर चरण नहीं धरते,
मत्त मतंगज कभी झूमते,
सजग शशक नभ को चरते;
कभी कीश-से अनिल डाल में
नीरवता से मुँह भरते,
बृहत् गृद्ध से विहग छदों को
बिखराते नभ में तरते।" (पन्त : बादल)

(२) "गूढ़ कल्पना-सी कवियों की,
अज्ञाता के विस्मय-सी,
ऋषियों के गंभीर हृदय-सी,
बच्चों के तुतले भय-सी।" (पन्त : छाया)

(३) "मादकता-से आये थे, संज्ञा से चले गये वे।"
(प्रसाद : आँसू)

(४) "सुषमा की प्रतिमा एक तरुणी दिवांगना-सी,
रति की अनूप रचना-सी,
सुन्दरी प्रणय अभिलाषा-सी,
मादक मदिरा-सी,
मोहक इन्द्रधनु-सी ॥" (सोहनलाल द्विवेदी : वासवदत्ता)

(५) "विकट-दर्शन कज्जल मेरु-सा, गज सुरेन्द्र समान पराक्रमी।
द्विरद क्या जननी उपयुक्त है, यक पयोमुख बालक के लिए ?"
(हरिऔध : प्रियप्रवास)

अनुशीलन

(१) 'सफरी से चञ्चल घने, मृग से पीन सु ऐन।
कमल पत्र से चारु ये, राधे जू के नैन ॥'

(२) 'हरिन मोह-तम दिनकर-कर से।
सेवक–सालि–पाल जलधर से।
अभिमत दानि देवतरु-वर से।
सेवत सुलभ सुखद हरिहर-से।'

(३) 'मुखरित करता था सद्म को जो शुकों सा,
कलरव करता था, जो खगों सा वनों में,

सुध्वनित पिक लौं जो बाटिका था बनाता,
वह बहुविध कण्ठों का विधाता कहाँ है ?'

(४) 'दर्द की तरह उठे, गिर पड़े आँसू की तरह।'

(च) उपमेयोपमा (Reciprocal Comparison)

जहाँ उपमेय और उपमान परस्पर (एक-दूसरे के) समान दिखाये जाते हैं, वहाँ 'उपमेयोपमा' होती है, इसी को 'परस्परोपमा' भी कहा जाता है।

इसमें उपमेय की उपमान से और उपमान की उपमेय से समता दिखाई जाती है।

उदाहरण

(क)

(१) अम्बर गंग सो है सरजू, सरजू सम गंग छटा नभ साजै।
यों 'लछिराम' सु-देव से सेवक, सेवक से सुभ देव-समाजै ॥
सोहैं सुरेस-से राम नरेस, सुरेसहु राम नरेस सो राजै।
औधपुरी अमरावती सी, अमरावती औधपुरी सी बिराजै ॥

—लछिराम

(२) भू पर भाउ भुवपति को मन सो कर, औ कर सो मन ऊँचो।

—मतिराम

(३) रमणी मुख शशि तुल्य है, शशि रमणी मुख तुल्य।

(४) सब मन रंजन है खंजन से नैन आली
नैनन से खंजन हू लागत चपल हैं।
मीनन से महा मनमोहन हैं मोहिबे को
मीन इन ही से नीके सोहत अमल हैं।

मृगन के लोचन से लोचन है रोचन ये।
मृग दृग इनहीं से सोहे पलापल हैं॥
सुरति निहारि देखी नीके ऐरी प्यारी जूके।
कमल से नैन अरु नैन से कमल हैं॥ (सूरति मिश्र)

(ख)

(५) है कठोर कुलिश—असज्जन हृदय-सा।
है असज्जन हृदय कुलिश-कठोर ही।
सज्जनों की प्रकृति होती अमृत-सी।
अमृत होता सुज्जनों की प्रकृति सा॥

(६) चांदनी सी तुम मधुर तुमहो मधुर प्रिय चांदनी सी। (सुधीन्द्र)

विशेषः—प्रसिद्ध हिन्दी अलंकारग्रथ, काव्य निर्णय, भाषा-भूषण के रचियता 'मतिराम,' भिखारीदास, जसवन्तसिंह ने इस अलंकार को 'उपमेयोपमान' संज्ञा दी है और 'काव्यादर्शकार (दण्डी) ने 'अयोन्योपमा' की।

अनुशीलन

(१) 'राम के समान शंभु, शभु सम राम है।'

(२) 'तेरो तेज सरजो समर्त्थ दिनकर सो है।
दिनकर सो है तेरे तेज के निकर सो॥
भौंसिला भुवाल तेरो जस हिमकर सोहै।
हिमकर सो है तेरे जसके निकर सो॥
'भूषन' भनत तेरो हियो रत्नाकर सो।
रतनाकरौ है तेरो हिए सुखकर सो॥
साहि के सपूत सिव साहि दानि तेरो कर।
सुरतरु सो है सुरतरु तेरो कर सो॥

(३) 'तो मुख सो ससि सोहत है बलि ।
सोहते हैं ससि सो मुख तेरो ।।' (गोकुल)

(४) सुधा सन्त के वचन सी, वचन सुधा सम जान ।
वचन खलन के विष, सरिस विष खल वचन समान ।।

आश्चर्य रामदहिन ने इसका उदाहरण यह दिया है :—
रत्तिस से थन्यून या कपि से था वह कम ।

परन्तु वास्तव में यह अलंकार ही नहीं है इसमें तो यथार्थ का तथ्य कथन है ।

(६) अनन्वय या अनन्वयोपमा (Self comparison)

'उपमेयोपमा' में किसी उपमेय का एक ही उपमान बताया जाता है, परन्तु 'अनन्वय' में उपमान को नितान्त अभाव हो जाता है—इसलिये ।

"जहाँ उपमान के अभाव के कारण वर्णन (उपमेय) ही उपमान का भी स्थल ले लेता है, वहाँ 'अनन्वय' होता है ।"

अनन्वय का अर्थ है (अन्‌त + अचण) सम्बन्ध का अभाव । इस अलंकार में उपमेय का किसी उपमान के साथ (उपमा) सम्बन्ध नहीं रहता ।

उदाहरण

(क)

(१) भरत भरत राम जानि । (रा० च० मा०)

(२) राम-से राम, सिया-सी सिया सिरमौर विरंचि विचारि सँवारे ।

(३) यद्यपि दुर्बल आरत है, पर भारत के सम भारत है ।
(मैथिलीशरण गुप्त)

(४) आजु गरीब निवाज महीं पर तो सो तुही सिवराज बिराजै।
(भूषणः शिवराज भूषण)

(५) "देखे मुख भावे, अनदेखे ही कमलचन्द ।
ताते मुख मुखै सखी कमलौन चन्दरी ॥"
(केशव : रामचन्द्रिका)

(६) "सुन्दर नन्द किशोर-से ।
सुन्दर नन्द किशोर ।

(७) "उपमा न कोउ कह दास तुलसी
कतहुँ कवि कोबिद कहहिं ॥
बल-बिनय बिद्या सील शोभा ।
सिन्धु इन्ह से अहहिं ॥"
(तुलसी)

(ख)

(१) उस काल दोनों में परस्पर युद्ध वह ऐसा हुआ ।
है योग्य बस कहना यही अद्‌भुत वही वैसा हुआ ॥ (जयद्रथ-वध)

(२) मैं किसको पाकर भूल तुम्हें जाऊँ बोलो ।
तुम-सी तो केवल तुम्हीं विधाता की रचना ॥ (सुधीन्द्र)

(ज) ललितोपमा

जहाँ उपमा का भाव (या अर्थ) स्पष्ट धर्म समानता मे न होकर अन्य लक्ष्य या व्यग्य प्रयोग द्वारा प्रकट किया जाता है, वहाँ ललितोपमा होती है ।

इसे लक्ष्योपमा, व्यग्योपमा अथवा लीलोपमा भी कहा जाता है ।

उदाहरण

(१) "चिढ़ जाता था बसन्त का कोकिल भी सुनकर यह बोली।
सिहर उठा करता था मलयज इन श्वासों के सौरभ से॥"
(प्रसाद)

आचार्य कन्हैयालाल पोद्दार ने इसे लक्ष्योपमा और व्यंगोपमा नाम देकर इस प्रकार स्पष्ट किया है :—

(२) "सरसिज सोदर है प्रिये तेरे दृग रमणीय।"

यहाँ 'कमल के सहोदर' कहने का लक्ष्यार्थ कमल के समान सुन्दर कोमल कहना ही अभिप्रेत है। यहाँ लक्ष्योपमा है। इसी प्रकार व्यंग्योपमा देखिये :—

३—परम पुरुष के परम दृग दोनों एजु
भनत पुरान वेद वानी औ पढ़ गई।
कवि 'मतिराम द्यौसपति वे निसापति ये
काहू की निकाई कहूँ नैक न बढ़ गई।
सूरज के सुत न करन महादानी भयो
वाही के विचार मति चिन्ता में मर गई।
तोहि पाट बैठत कमाऊ के उद्योतचन्द्र
चन्द्रमा की करज करे जो सो कट गई। (मतिराम)

(४) साहितनै सरजा सिया की सभा जा मधि है,
मेरवारी सुर की सभा को निदरति है। (भूषण)

(५) स्वयं स्वर्ग का भी शासन क्या दे सकता था बढ़कर मोद।
जब रहने को उन्हें मिली थी स्वतन्त्रता की सुखमय गोद।
(सुधीन्द्र : जौहर)

आचार्य कन्हैयालाल पोद्दार ने उपमा के भेद बताये हैं जो निम्नलिखित उक्ति से प्रकट है—
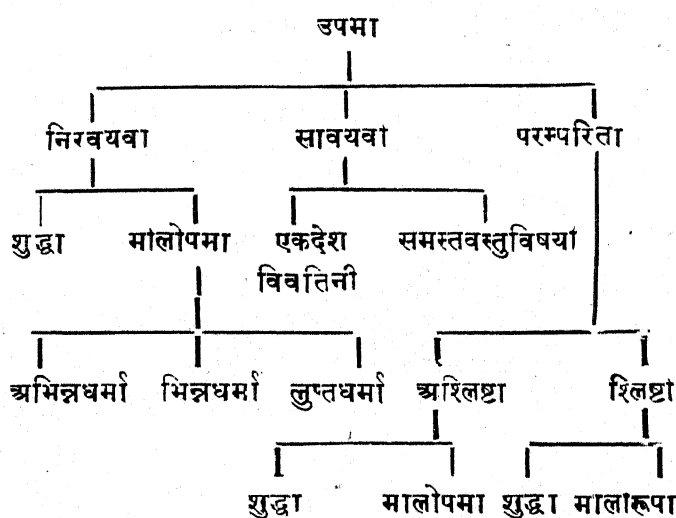
स्मरण

(नोट—प्रस्तुत की दर्शन पतीति से अप्रस्तुत का रूप स्मरण)

जहाँ अप्रस्तुत के दर्शन, श्रवण-चिन्तन आदि से प्रस्तुत का स्मरण होना वर्णित हो, वहाँ 'स्मरण' अलङ्कार होता है।

अप्रस्तुत का स्मरण आने के कथन द्वारा प्रस्तुत का अप्रस्तुत से रूप-गुण सादृश्य ही अभिप्रेत होता है।

विशेष दशाओं में अप्रस्तुत से प्रस्तुत रूप भी स्मरण हो सकता है।

उदाहरण

(क)

(१) लखि ससि मुख की होत सुधि,
तन सुधि घन को जोहि।

(२) तुम सिवराज ब्रजराज अवतार आज
तुमही जगत काज पोषत—भरत हो।
तुम्हें छांड़ि याते काहि विनती सुनाऊँ मैं,
तुम्हारे गुन गाऊं तुम ढीले क्यों परत हो॥
भूषन भनत वांह कुल में नयो गुनाह,
नाहक समुझि यह चित्त में धरत हौं।
और बामनन दखि करत सुदामा सुधि,
मोहि देखि काहे सुधि भृगु की करत हौ॥ —भूषन

(ख)

(१) देखता हूँ जब पतला
इन्द्र धनुसी हलका
रेशमी घूंघट बादल का
खोलती है जब कुमुद कला
तुम्हारे मुख का ही तो ध्यान
मुझे तब करता अन्तर्धान —पन्त

(२) फूली डोलें सन्कुसुममयी नीप की देख आँखो।
आ जाती है मुरलिधर की मोहनी मूर्ति आगे।।
कालिन्दी के पुलिन पर आ देख नीलाम्बु प्यारा।
हो जाती है उदय उर में माधुरी अम्बरों सी॥
—[हरिऔध-प्रिय प्रवास]

वि०—लाला भगवानदीन ने संबंधी वस्तु से स्मरण को भी यह अलङ्कार माना है परन्तु यह उचित नहीं क्योंकि ऐसे स्थलों पर रुचि संचारीभाव होगा नकि स्मरण अलंकार। 'स्मरण' का व्यङ्ग तो रूप सादृश्य ही है, इसलिए यहाँ स्मरण नहीं है।

(१) सघन कुञ्ज छाया सुखद सीतल मन्द समीर।
मन ह्वै ज्यत अजौं वहै व जमुनर के तीर॥

—[विहारी–सतसई]

"भ्रान्तिमान" (Illusion)*

जहाँ प्रस्तुत में रूप रंग, क्रिया आदि के साम्य से अप्रस्तुत का भ्रम होना दिखाया जाता है, वहाँ भ्रांतिमान (या भ्रम) होता है।

(क)

(१) पांय महावर देन की नाइन बैठी आय।
फिर फिर जान महावरी, ऐंड़ी मीड़त जाय॥

[बिहारी : सतसई]

(२) अन्त मरैंगे चलि जरैं चढ़ि पलास की डार।
फिर न मरैं मिल हैं अली ! ये निरधूय अंगार॥

[बिहारी : सतसई]

(ख)

(१) नाक का मोती अधर की कांति से,
बीज दाड़िम का समझ कर भ्रान्ति से।
देख उसको ही हुआ शुक मौन है,
सोचता है अन्य शुक यह कौन है ?

—(मैथिली : 'साकेत')

* गुण–समता से प्रस्तुत अप्रस्तुत का भ्रम अलंकरण।

"सन्देह"*

जब प्रस्तुत में विधयक गुण (रूप, क्रिया आदि) के साम्य से, अप्रस्तुत का सन्देह (संशय) होना दिखाया जाता है, वहाँ 'सन्देह' अलंकार होता है।

(१) किधौं इन्द्र को वज्र है, प्रलय-कृसानु अमंद,
किधौं रुद्र रण चण्ड चल कवि जो कौ छन्द।
(वियोगीहरि : वीर सतसई)

(२) गंगाजल की पाग सिर सोहत श्री रघुनाथ।
शिव सिर गंगाजल किधौं चन्द्र चन्द्रिका साथ।
(केशव : रामचन्द्रिका)

(ख)

(३) विद्रुम सीपी सम्पुट में मोती के दाने कैसे ?
है हंस न, शुक वह, फिर क्यों चुभने को मुद्रा से ?
(प्रसाद : आंसू)

(४) कोई पुरन्दर की किंकरी है कि या किसी सुर की सुन्दरी है।
वियोगतप्ता-सी भोगमुक्ता हृदय के उद्गार गा रही है।
(श्रीधर पाठक : अनन्त वीणा)

(५) मद भरे ये नलिन नयन विहीन हैं,
अल्पजल में या विकल लघु मीन है।
या प्रतीक्षा में किसी की शर्वरी,
बीत जाने पर हुए ये दीन है।
या पथिक से लाल लोचन कह रहे,
हम तपस्वी हैं सभी दुख सह रहे। —निराला

* गुण समता से प्रस्तुत में जब अप्रस्तुत का है 'सन्देह'

(६) दायां हाथ लिये था सुरभित चित्र विचित्र सुमन माला।
होगा धनुष कि कल्पलता पर मनसिज ने झूला डाला॥
(गुप्तजी : 'पंचवटी')

(७) कज्जल के कूट पर दीपशिखा सोती है कि
श्याम घन-मण्डल में दामिनी की धारा है।
यामिनी के अंक में कलाधर की कोर है कि
राहु के कबन्ध पै कराल केतु तारा है।
'शंकर' कसौटी पर कंचन की लीक है कि
तेज ने तिमिर के हिये में तीर मारा है।
काली पाटियों के बीच मोहिनी की मांग है कि
ढाल पर खांडा कामदेव का दुधारा है।
(शंकर)

निम्नलिखित 'सन्देह' में सन्देह काल्पनिक ही होता है वास्तविक नहीं। इसलिए द्रौपदी दुकूलार्णव का यह सन्देह वस्तुतः 'सन्देह' अलंकार नहीं है—सन्देह का भाव है।

सारी बीच नारी है कि नारी बीच सारी है
कि सारी ही की नारी है कि नारी ही की सारी है ?

भ्रान्तिमान और सन्देह

भ्रान्तिमान (भ्रम) और 'सन्देह' अलंकार में थोड़ा ही अन्तर है, परन्तु वह अत्यन्त स्पष्ट है। भ्रम दोनों में ही होता है या सन्देह दोनों में होता है, किन्तु भ्रान्तिमान में भ्रम या सन्देह अन्ततः प्रतीति बन जाता है अर्थात् सन्देह नहीं रहता, परन्तु 'सन्देह' में सन्देह ही बना रहता है—जैसे यह है या वह है आदि।

"अपन्हुति"* (Concealment)

जहाँ प्रस्तुत (वर्ण्य या उपमेय) का निषेध करके अप्रस्तुत (वर्ण्य या उपमेय) की स्थापना की जाती है, वहाँ 'अपन्हुति' होती है।

अपह्नुति का अर्थ है 'गोपन'—निषेध करना। इसमें आलंकारिक रूप से वर्ण्य का गोपन किया जाता है।

जहां वर्ण्य गोपन विविध—वह अपन्हुति प्रशस्त।
शुद्ध हेतु फिर छेक भ्रम कैतव औं पर्यस्त।

यह छः प्रकार की होती है :—

(क) शुद्धापन्हुति— सत्य बात (उपमेय) का निषेध और असत्य (उपमान) की स्थापना।

(ख) हेत्वपन्हुति— (हेतु + अपन्हुति), जहां शुद्धापन्हुति के साथ असत्य स्थापना का हेतु भी उल्लिखित हो।

(ग) छेकापन्हुति— (छेक-चतुर), जहाँ किसी गुप्त बात को पहले कहकर फिर उसे असत्य बात से छिपाया जाता है।

(घ) भ्रांत्यापन्हुति—असत्य बात को अस्वीकार करके सत्य बात की स्थापना द्वारा भ्रांन्ति का निराकरण।

(ङ) कैतवापन्हुति—(कैतव - छल) कैतव, मिस, व्याज, बहाने शब्दों द्वारा उपमेय का निषेध।

---

* प्रस्तुत का निषेध अप्रस्तुत-सिद्धि अपह्नुति अलकार।

(च) पर्यस्तापन्हुति—(पर्यस्त - फेंका हुआ) एक वस्तु में उसके सच्चे धर्म का निषेध करके दूसरी में स्थापना।

शुद्धापन्हुति

(१) दृगजल युक्त वदन मंडल को अलकें श्याम न थी घेरे।
ओस भरे पंकज उर पर थे मधुकर माला के डेरे॥

(२) सुपत्र संचालित थे न हो रहे।
नहीं स-शाखा हिलते फलादि थे।
जता रहे थे निज स्नेहशीलता।
स्वइंगितों से तरु वृन्द इंगुदी।
(हरिऔध : प्रियप्रवास)

(३) है न स्मित मेरे अधर पर यह तुम्हारा हास ज्योतित।
धूप सौरभ है तुम्हारा है न मेरा श्वास सुरभित।
(सुधीन्द्र : अमृतलेखा)

(४) ये न मग हैं तव चरण की रेखियां हैं।
बलि दिशा की ओर देखादेखियां हैं।
विश्व पर पद से लिखे कृति लेख है ये।
धरा तीर्थों की दिशा की मेख हैं ये।
(एक भारतीय आत्मा)

(५) चिबुक देख फिर चारण चूमने चला चित्त चिर चेरा।
वे दो ओठ न थे रक्खे था एक फटा उर तेरा। (गुप्त)

विशेष : कभी-कभी प्रश्न से भी इसकी व्यजना हो सकती है :—

(१) था प्राकार कहां ? वह तो था क्षात्र धर्म का सजग शरीर।

(२) यह जग का आसव आसव है ? नहीं प्रेम उन्माद यही !
यह जग की उल्फत उल्फत क्या ? इश्क-खुदा का स्वाद यही !
(सुधीन्द्र : जौहर)

(३) इन्द्रवधू आने लगी क्यों निज स्वर्ग बिहाय।
नहीं इला का हृदय निकल पड़ा यह हाय !
(मैथिलीशरण : साकेत)

हेत्वपन्हुति (हेतु + अपन्हुति)

[उपमेय निषेध के उपरान्त उपमान स्थापन का हेतु निर्देश]

(१) सिव सरजा के कर लसै, सो न होय किरवान !
भुज-भुजंगेस-भुजगिनी, भखति पौन-अरि-प्रान !
(भूषण : शिवराजभूषण)

[उपमेय निषेध हेतुपूर्वक उपमान स्थापन]

(२) रात मांझ रवि होत नहिं, ससि नहिं तीव्र सुलाग।
उठी लखन अवलोकिये वारिधि सों बड़वाग।

(३) धुरवां होंहि न अलि उठे धुवां धरनि चहुं करेद।
जारत अखत जगत को परवस प्रथम पयोद।
(बिहारी : सतसई)

(ख)

"पहले आंखों के थे मानस में कूद मग्न प्रिय अब थे।
छींटे वही उड़े थे बड़े-बड़े, और वे कब थे ?" (गुप्त)

छेकापन्हुति

जहाँ पहले प्रकट की हुई गोपनीय वस्तु को शब्द-कौशल से छिपाया जाता हैं।

इस गोपन में 'श्लेष' का आश्रय लिया जाता हैं।

(१) तिमिर-वंश हर, अरुण-कर आयो सजनी भोर।
सिव सरजा ? चुप रहि सखी ! सूरज-कुल सिर मौर ॥

[तिमिर-वंश को मिटाने वाला प्रातःकाल आया, सखी ने तैमूर-वंश के नाशक समझ कर पूछा —'क्या शिवाजी ? चतुर सखी ने इस सत्य को छिपा लिया और बोली; नहीं, सूर्य्य ।]

कह कर मुकर जाने के कारण इस प्रकार की उक्तियों को कहमुकरी (या 'कहमुकसी') भी कहते हैं।

(२) सोभा सदा बढ़ावनहारा । आँखिन ते छिन करूं न न्यारा।
आठ पहर मेरा मन रंजन। 'क्यों सखि साजन' ना सखि अजन।

(३) ऐनक दिये तने रहते हैं। अपने को सोहब कहते हैं।
उनका मन औरों के काबू। क्यों सखि साजन ? नहिं सखि बाबू ।

(४) पर गुन को गाते रहते हैं।
दोष किसी का नहिं कहते हैं ॥
निज कुल को करते हैं मंडित ।
यों सखि सुरगण ? नहिं सखि 'पंडित'।

भ्रान्त्यापन्हुति

यहाँ किसी की भ्रान्ति को दूर करने के लिए निषेध किया जाता है। यह छेकापन्हुति तथा शुद्धापन्हुति का विलोम है। इसमें भ्रम (भ्रान्ति) अन्तर्भूत रहती है।

उदाहरण

(१) बेसर मोती दुति झलक परी अधर पर आय।
चूनो होय न चतुर तिय, क्यों यह पोंछ्यो जाय ? (बिहारी)

[नायिका अधर पर पड़ी हुई मोती की झाईं को चूने का दाग समझ कर पोंछ रही है। उस भ्रम को दूर करने के लिए निषेध किया गया है।]

(२) चन्द न, चन्दन-बिन्दु यह,
माँग, न सुरसरि-धार,
तिय, न नैन मोती लसै
मैने ! मैं न हर, नार।

[हे मदन (मैन) यह चन्द्रमा नहीं है, चन्दन बिन्दु है। गंगा की धारा नहीं है, माँग है। तीसरा नेत्र नहीं है, मोती है। मैं महादेव नहीं हूँ, स्त्री हूँ।

(३) आनन है अरविन्द न फूले अलीगन भूलि कहा मँडरात हौ।
कीर तुम्हें कहा वायु लगी भ्रम बिम्ब से ओंठनु का ललचात हौ।
दास जू व्याली न, बेनी रची, तुम पापी कलानी कहा इतरात हौ।
बोलत बाल, न बाजत बीन, कहा सिगरे मृग घेरत जात हौ।
(भिखारीदास)

(ख)

(४) हंस, हहा तेरा भी बिगड़ गया क्या विवेक बन बन के।
मोती नहीं, अरे ये आंसू हैं उर्मिला जन के।
(गुप्त : साकेत)

इस भेद का 'निश्चय' नामक स्वतन्त्र अलंकार भी माना गया है, किन्तु यह भ्रान्ति है। वास्तव में यहाँ अपन्हुति तो अवश्य ही है—हाँ भ्रान्तापन्हुति न कह कर निश्चयापन्हुति कहा जा सकता है। इसका अन्य नाम अभ्रान्तापन्हुति भी हो सकता है।

कैतवापन्हुति

जहाँ किसी कैतव (व्याज, छल, मिस, बहाने) के द्वारा प्रस्तुत का गोपन करके अप्रस्तुत की स्थापना होती है। इसमें व्याज या मिस या 'छल' वाचक होते हैं।

उदाहरण

(क)

(१) लखी नरेस बात यह सांची। तिय मिस मीचु सीस पर नाची।
(तुलसी : रा० च० मा०)

(२) छनषरमा के छल रही चमकि मार-करवार।
वीर वधू के व्याज री, दहकत आजु अँगार।

(ख)

(३) प्रिये, कलि कुसुम कुसुम में आज,
मधुरिमा मधु सुखमा सुविकास।
तुम्हारी रोम-रोम छवि व्याज।
छागया मधुवन में मधुमास। (पन्त : गुंजन)

(४) निपट नीरव ही मिस ओस के
नयन से गिरता बहु वारि था। (प्रियप्रवास)

(५) शरद्-चाँदनी के मिस विधु ने
अपना जाल बिछाया था। (पञ्चवटी)

(६) देख वसुधा का यौवन भार
गूंज उठता है जब मधुमास,
विधुर उर के से मृदु उद्गार
कुसुम जब खुल पड़ते सोच्छ्‌वास,

न जाने सौरभ के मिस कौन
सन्देशा मुझे भेजता मौन !
(पन्त : मौन-निमन्त्रण)

(७) भूपति पद को विच्छेद हुआ
यह सुन कर किसे न खेद हुआ।
वह भी रोया चुपचाप हहा
हिम कण मिल आज समूह चला।
(गुप्त : साकेत)

(८) समीर मिस हाँफ रही सी
चली बेग रही किसके पास ?
(प्रसाद : कामायनी)

पर्यस्तापन्हुति

यहाँ प्रस्तुत के धर्म का निषेध करके उसे अप्रस्तुत (या विलोम) में आरोप किया जाता है।

'पर्यस्त' का अर्थ 'फेंका हुआ' या स्थानान्तरिक्त होता है।

उदाहरण

(क)

(१) कालकूट विष नाहिं, विष है केवल इंदित।
हर जागत छकि नाहिं, यहि सँग हरि नींद न तजत।

[कालकूट के विष धर्म का निषेध करके उसका आरोप इंदिरा (लक्ष्मी) में किया गया है।]

(२) है न सुधा वह है सुधा संगति साधु समाज।

[यहाँ सुधा में सुधात्व का निषेध है, साधु संगति में स्थापन।]

(३) "है न चन्द, यह चन्द अलि, राधा-बदन बिचारि।
हरि चकोर निसि दिवस हूँ, जीवत जाहि निहारि।"

(ख)

(४) "मधुशाला वह नहीं—जहां पर मदिरा बेची जाती है।
भेंट जहां मस्ती की मिलती मेरी तो वह मधुशाला।"

(बच्चन)

(५) पशु तो पशु है नहीं आज तो पशु है मानव। (सुधीन्द्र)

पर्यायस्तापन्हुति और परिसंख्या

'पर्यायस्तापन्हुति' में किसी वस्तु के प्रसिद्ध धर्म का निषेध किया जाता है—अन्य में आरोप।

'परिसंख्या' में धर्म का अन्य वस्तुओं से निषिद्ध करके एक में आरोप किया जाता है।

रूपक*

जहाँ उपमेय में उपमान के अभेद अथवा तद्रूपता का आरोप दिखाया जाता है अर्थात् जहाँ उपमेय उपमान का रूप ही धारण कर लेता है, वहाँ 'रूपक' होता है। इसमें उपमेय को उपमान-रूप या उपमान बताया जाता है।

'रूपक' का अर्थ है रूप ग्रहण करना। इस अलंकार में वर्ण्य (प्रस्तुत), अवर्ण्य (अप्रस्तुत) अर्थात् उपमान का रूप ग्रहण करता है।

* "प्रस्तुत में अप्रस्तुत आरोपित या अध्यवसित रूपक।"

यह समझना आवश्यक है कि उपमा के बिना रूपक की धारणा नहीं हो सकती। उपमा में उपमेय और उपमान पृथक-पृथक रहते हैं। उनमें भेद रहता है किन्तु रूपक में उपमेय और उपमान का भेद मिटना आवश्यक है। यह भेद दो प्रकार से मिलता है—

(१) अभेद के द्वारा।

(२) ताद्रूप्य (तद्रूपता) के द्वारा।

अतः रूपक की दो मुख्य कोटियाँ होती हैं।

रूपक के भेद

(क) अभेद द्वारा आरोप होने पर अभेद रूपक और

(ख) तद्रूपता द्वारा आरोप होने पर तद्रूप रूपक होता है।

आरोप होने पर भी उपमेय के (१) उत्कर्ष, (२) अपकर्ष या साम्य के आधार पर रूपक के (१) अधिक, (२) हीन और (३) सम तीन उपभेद और होते हैं।

इस प्रकार रूपक के समस्त भेद-उपभेद इस प्रकार होते हैं—

१—अभेद रूपक—

(क) सम

(ख) अधिक

(ग) न्यून या हीन

२—तद्रूप रूपक—

(क) सम

(ख) अधिक

(ग) न्यून या हीन

इस प्रकार रूपक का चक्र यह होता है :—
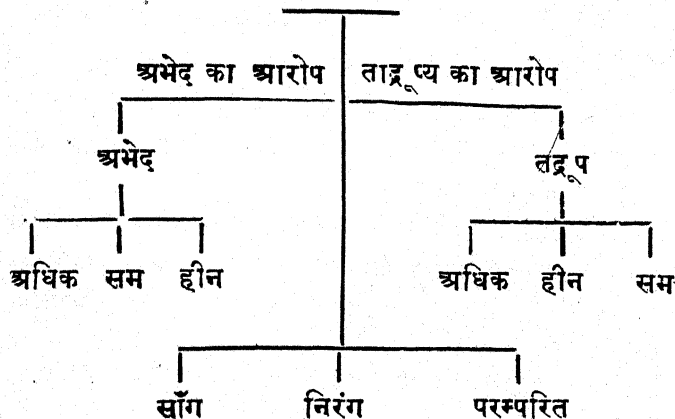
(१) अभेद रूपक

(क) सम अभेद—

(१) बीती विभखरी जाग री,
अम्बर-पनघट में डुबो रही
ताराघट ऊषा-नागरी ! (प्रसाद : लहर)

[अम्बर (पनघट), तारा (घट), ऊषा (नागरी)]

(२) मंगल-बिन्दु सुरंग, ससि मुख, केसर-आड़ गुरु।
इक नारी लहि संग, रसमय किय लोचन जगत। (बिहारी)

[लाल बिंदी (मंगल), मुख (चन्द्र), केसर-आड़ (गुरु), लोचन (जगत)]

(३) जितने कष्ट-कण्टकों में हैं जिनका-जीवन-सुमन खिला।
गौरव-गन्ध उन्हें उतना ही अत्र तत्र सर्वत्र मिला।
(मैथिलीशरण गुप्त : पञ्चवटी)

(४) संध्या घनमाला की सुन्दर ओढ़े रंग बिरंगी छींट;
गगन चुम्बिनी शैल श्रेणियाँ पहने हुए तुषार-किरी।
(प्रसाद : कामायनी)

(५) मैं नीर भरी दुख की बदली।
मैं क्षितिज भृकुटि पर फिर धूमिल, चिन्ता का भार बनी अविरल,
रजकण पर अलकण हो बासी, नव जीवन अंकुर बन निकली।
(महादेवी)

(६) ग्रथन गौरव से करने लगी
ब्रज विभूषण की गुण-मालिका। (हरिऔध : प्रियप्रवास)

(७) फूला इन्द्र और उसका रस पिया मुकुन्द मिलिन्द ने,
झलकाये कुछ हिमकण से बस उसके मुख अरविन्द ने।
(मैथिलीशरण : द्वापर)

(ख) अधिक अभेद—

(१) रहै सदा विकसत विमल धरै वास मृदु मंजु।
उपज्यो नहिं पुनि पंक तें राधे को मुख-कंजु।

(२) जंग में अंग कठोर मड़ा मदनीर झरै झरना सरसे हैं।
झूलनि रंग घने 'मतिराम' महीरुह फूल प्रभानि कसे हैं।
सुन्दर सिंदुर मण्डित कुम्भनि गैरिक शृंग उतंग लसे हैं।
भाऊ दिवान उदार अपार सजीव पहार-करी विकसे हैं।

[हाथियों को 'झरना', 'पेड़', 'फूल', 'शृंग' आदि के सहचर्य से पहाड़ रूप दिखाकर उनकी सजीवता (उत्कर्ष रूप में) दिखाई गई है।]

(३) सरोज है दिव्य सुगन्ध से भरा।
नृलोक में सौरभवान स्वर्ण है।
सुपुष्प से सज्जित पारिजात है।
मयंक है श्याम बिना कलंक का। (प्रियप्रवास)

[श्याम (कृष्ण) को दिव्य सुगंध वाला कमल, सौरभवान स्वर्ण, पुष्पवान् कल्पवृक्ष और अकलंक चन्द्रमा कहा गया है।]

(ग) हीन (न्यून) अभेद—

(१) सबके देखत व्योम-पथ गयो सिन्धु के पार।
पच्छिराज बिन पच्छ को वीर समीर कुमार।

[हनुमान पर पक्षी का आरोप है, किन्तु उनमें पंखों की न्यूनता है।]

(२) साहि तनै शिवराज भूषन सुजस तव,
विगिरि कलंक चन्द उर आनियतु है।
पंचानन एक ही वदन गनि तोहि,
गजानन गजबदन बना बखानियतु है।
एक सीस ही सहस सीस कला करिबे को,
दुहूँ दृग सों सहस दृग यानियतु है।
दुहूँ कर सों सहस कर मानियतु तोहि,
दुहूँ बाहु सों सहस बाहु आनियतु है। (भूषण)

[शिवराज को बिना कलंक का चन्द्रमा, एक मुख का पञ्चानन, बिना गजवदन का गणेश, एक शीश का सहस्र शीश, दो देशों के सहस्र नेत्र (इन्द्र), दो कर के सहस्र कर और दो बाहों के सहस्र बाहु बताया गया है। ये सब न्यूनतायें हैं।]

(ख)

(३) है अयोध्या अवनि की अमरावती,

इन्द्र है दशरथ विदित वीर व्रती। (गुप्त : साकेत)

(४) है राधा तू उर्वशी, धरे मनुषी देह।

(५) महादानि जाचकन को भाऊ देत तुरंग।

पच्छन बिगर विहंग हैं, सुंडन बिगर मतंग। (मतिराम)

(२) तद्रूप रूपक

तद्रूप रूपक में उपमेय-उपमान की भिन्नता तद्रूपता के द्वारा रक्खी जाती है। इसमें उपमेय उपमान का दूसरा रूप हो जाता है। दोनों का अभेद नहीं हो पाता। यह भी तीन प्रकार का होता है—सम, अधिक और हीन (न्यून)।

(क) सम तद्रूप—

(१) आभा वाले कलश जिनके दूसरे अर्क ही हैं।

(हरिऔध : प्रियप्रवास)

(ख)

"अमिय झरत चहुँ ओर अरु नयन ताप हरि लेत।

राधा मुख यह अपर ससि सतत उदित सुख देत।"

(क० ला० पो०)

(ख) अधिक तद्रूप—

(क)

(१) "सत को कामद, असत को—

भयप्रद सब दिसि दौर।

दास जाचिबे जोग यह

कल्पवृक्ष है और।"

[यहाँ किसी राजा को कल्पवृक्ष की तद्रूपता दी है परन्तु उसे सत् का कामदाता, असत् का भयदाता कह कर कल्पवृक्ष से अधिकता भी दिखाई गई है ।]

(२) "एहो नन्दनन्द प्यारी तेरो मुख चन्द यहै
चन्द ते अधिक अंक पंक को विहीनो ।"

[यहाँ पंकविहीन कहकर अधिकता ही दिखाई गई है।]

(ख)

(३) तुम इस धरती में दूसरे अमर हो ।
रात-दिन दृश्यमान और सुखकर हो ।

(ग) हीन (न्यून) तद्रूप—

(१) एक जीभ के लछिमन, दूसर सेस । (तुलसी : बरवै रामायण)

(२) क्यों आज नीरस दल सदृश
मुख रंग पीला पड़ गया ।
क्यों चन्द्रिका से हीन है यह
चन्द्रमा होकर नया ।
(पुरोहित प्रतापनारायण : नल नरेश)

(३) सुरपुर है यह देश हमारा
किन्तु यहाँ हैं देव कहाँ ?

वर्णन-शैली के आधार पर रूपक के भेद इस प्रकार किये जाते हैं—

(क) सांग या सावयव
(ख) निरंग या निरवयव
(ग) परम्परित

वस्तुतः ये भेद 'सम' अभेद में ही हो सकते हैं—

(क) साँग रूपक

इसमें उपमेय में उपमान का आरोप उसके समस्त अंगों के साथ किया जाता है।

उदाहरण

(१) उदित उदय-गिरि मंच पर रघुवर बाल-पतंग।
विकसे सन्त सरोज मन हरषे लोचन-भृंग॥

(तुलसी : रामचरितमानस)

[मञ्च–उदयगिरि, राम (रघुवर)–बाल सूर्य, सन्त-मन-सरोज, लोचन–भृंग]

(२) मुद मंगलमय सन्त समाजू। जो जग जंगम तीरथ-राजू।
रामभगति जहँ सुरसरि-धारा। सरसइ ब्रह्म विचार-प्रचारा।
विधि निषेध मय कलिमल हरणी। करम कथा रविनंदिनि वरणी।
हरिहर कथा विराजति बेनी। सुनत सकल मुद मंगल देनी।
बट विश्वासु अचल निज धर्मा। तीरथराज समाज सुकर्मा।

[रामभक्ति–गंगा, ब्रह्मविचार–सरस्वती, कर्मकथा–यमुना, हरिहर-कथा–त्रिवेणी, विश्वास–अक्षयवट]

(तुलसी : रा० च० मा०)

(३) प्रथम यौवन मेरा मधुमास, मुग्ध उर मधुकर, तुम मधु प्राण!
शयन लोचन, सुधि स्वप्न विलास, मधुर तन्द्रा प्रिय ध्यान,
शून्य जीवन निसङ्ग आकाश, इन्दु-मुख इन्दु समान,
हृदय सरसी छवि पद्म विकास, स्पृहाएँ ऊर्मिल गान।

(पन्त : गुञ्जन')

(४) मेरे मस्तक के छत्र मुकुट वसुकाल सर्पिणी के शतफन।
मुझ चिरकुमारिका के ललाट में नित्य नवीन रुधिर चन्दन।
आजा करती हूँ चिता-धूम का दृग में अन्ध तिमिर अञ्जन।
शृङ्गार लपट की चीर पहन नाचा करती मैं छूम छान।
(दिनकर : 'विपथगा')

(५) खौरि पनच, भृकुटी धनुष, बधिक समर।
हनत तरुन मृग, तिलक सर, सुरक भाल भरि।
(बिहारी : 'सतसई')

निरंग (निरवयव)

उपमेय में अंगों के बिना ही उपमान का आरोप किया जाता है, उपमान के प्रधान गुण का आरोप ही होता है, अन्य धर्म का नहीं।

(१) प्रिय पति, वह मेरा प्राण प्यारा कहाँ है ?
दुख जल निधि डूबी का सहारा कहाँ है ?
मुख लख जिसका मैं आज लौं जी सकी हूँ,
वह हृदय हमारा नेत्र-तारा कहाँ है ?

(२) इस हृदय कमल का घिरना, अलि अलकों की उलझन में।
आँसू मरन्द का गिरना, मिलना निःश्वास पवन में।
(आँसू : प्रसाद)

(३) शत शत बार प्रलय के उस पर मँडराये बादल घातक।
पर गौरव गिरि शिखर दुर्ग का झुक न सका ऊँचा मस्तक।
(सुधीन्द्र : जौहर)

(४) रह चिर दिन तू हरी भरी।
बढ़ सुख से बढ़ सृष्टि-सुन्दरी॥ (गुप्तजी : 'साकेत')

परम्परित

जहाँ प्रधान रूपक का हेतु (कारण) कोई दूसरा रूपक हो वहाँ 'परम्परित' होता है। 'परम्परित का अर्थ है 'श्रृङ्खलाबद्ध'। इस रूपक में पहले एक रूपक आता है, फिर उसके आधार पर प्रधान रूपक का निरूपण होता है।

उदाहरण

(१) 'मुनि लोचन-चकोर-ससि राघव'। (तुलसी : गीतावली)

[मुनियों के लोचन चकोर हैं, इस कारण राघव (राम) चन्द्रमा हैं]

(२) 'तुम बिन रघुकुल-कुमुद-विधु'। सुरपुर नरक समान।

(तुलसी : रा० च० मा०)

(३) जय महेश मन-मानस-हँसा।

(४) उसी पूर्व की फटती पौ में, उसी हँस की नलिनी।

(मैथिलीशरण गुप्त : द्वापर)

(५) लाज के जल की मीन। —पन्त

(६) देती पृथ्वी पुष्प-मुखों से सरस सुरभि-संवाद।

(रामकुमार वर्म्मा : 'चित्ररेखा')

(७) हरिपद अरविन्द भ्रमर। (पाठक)

श्लेष के आधार पर भी यह रूपक स्थापित किया जा सकता है।

जैसे—

(१) मेरे मानस के हंस आज बनचारी। (मै० गुप्त० : साकेत)

[मन रूपी मानस के हंस]

(२) अंगद तुही बालिकर बालक।
उपजेहु बंस अनल कुल घालक। (रा० च० मा०)
[बंस : (वंश) तथा बाँस]

(३) दिग्दिगन्त में रूपगँध है उसी पद्मिनी का छाया। (जौहर)

नये कविगण कभी-कभी परम्परित रूपक में उपमेय अथवा उपमान का लोप भी कर देते हैं।

जैसे—

लो जग की डाली-डाली पर,
जागीं नव जीवन की कलियाँ!
(पन्त : मधुप्रभात)

[यहाँ (१) जग को 'उपवन' का आरोप है, परन्तु वह लुप्त है। (२) डाली उपमान है किन्तु इसका उपमेय कथित नहीं है।]

—————

परिणाम

जहाँ उपमान, उपमेय के साथ एक रूप होकर, उपमेय का व्यापार करता है वहाँ 'परिणाम' होता है।

'रूपक' 'में केवल उपमान उपमेय के साथ एक रूप होता है, व्यापार नहीं करता। परिणाम' में उपमान जो कार्य स्वयं नहीं कर सकता, उपमेय के साहचर्य से करता दिखाया जाता है। इस प्रकार इसमें रूपक के आगे की स्थिति प्रकट होती है। परिणाम का अर्थ है 'स्वभाव का बदलना'—यह उपमान का स्व-भाव [बदल जाता है।]

उदाहरण

(१) भ्रमरी-कबरी भार-गत, भ्रमरित-मुखरित मंजु ।
दूर करै मेरे दुरित, गौरी के पद कंजु ॥

[कन्हैयालाल : पोद्दार]

[यहाँ देवियों की कवरी के ऊपर बैठे हुए भ्रमरों से गुंजित गौरी के 'पद-कमल' के पाप को दूर करने वाला कहा गया है। कमल का काम नहीं।

(२) बातें बड़ी मधुर औ अति ही मनोज्ञा,
नाना मनोरम रहस्यमयी अनूठी।
जो हैं प्रसूत भवदीय मुखाब्ज द्वारा,
हैं वाञ्छनीय वह सर्व सुखेच्छुकों की।

[हरिऔध : प्रियप्रवास]

[प्रस्तुत उदारण में 'मुख कमल' से मधुर, मनोज्ञ व अनूठी बातें प्रसूत होती हुई बताई हैं जब कि कमल का काम बात करना नहीं है पर कमल, मुख (उपमेय) से एकरूप होकर बात करने में समर्थ हो सकता है]

उल्लेख

"एक विषय का है अनेक विधि दर्शन जहाँ वहाँ उल्लेख"

जहाँ एक विषय (व्यक्ति या वस्तु) का अनेक विध दर्शन (वर्णन या उल्लेख) हो वहाँ उल्लेख अलङ्कार होता है। यह दर्शन अनेक व्यक्तियों के द्वारा भी हो सकता है और एक व्यक्ति के द्वारा भी!

उदाहरण

(१) अनेक व्यक्तियों द्वारा : प्रथम उल्लेख।

(१) जाकी रही भावना-जैसी। प्रभु मूरति देखी तिन तैसी।
देखहिं भूप महा रनधीरा। मनहु वीर रस धरे सरीरा।
डरे कुटिल नृप प्रभुहि निहारी। मनहु भयानक मूरति भारी।
रहे असुर छल छोनिप वेषा। तिन प्रभु प्रगट काल सम देखा।
पुरवासिन देखे दोउ भाई। नरभूषन लोचन सुखदाई।
[तुलसी : रामचरितमानस]

एक ही राम मूर्ति को अनेकों व्यक्तियों ने अनेक रूपों में देखा।

(२) गोपीजन प्रियतम लख्यौ, गुरुजन सिसु, सुर कन्त।
यौगिन ब्रह्म हरिहिं लख्यौ, भगत लख्यौ भगवन्त।

(ख)

(२) एक व्यक्ति के द्वारा द्वितीय उल्लेख।

(१) सुरपति के हम ही हैं अनुचर, जगत्प्राण के भी सहचर।
मेघदूत की सजग कल्पना, चातक के चिर जीवन-धर।
मुग्ध शिखी के नृत्य मनोहर, सुभग स्वाति के मुक्ताकर।
विहँग वर्ग के गर्भ विधायक, कृषक बालिका के जलधर।
(पन्त)

(२) यह मेरी गोदी की शोभा, सुख सुहाग की है लाली।
शाही शान भिखारिन की है, मनोकामना मतवाली।
दीप शिखा है अन्धेरे की, घनी घटा की उजियाली।
ऊषा है यह कमलभृंग की, है पतझड़ की हरियाली।
(सुभद्राकुमारी चौहान : बालिका के प्रति)

उत्प्रेक्षा

जहाँ उपमेय (प्रस्तुत) में उपमान (अप्रस्तुत) की बल-पूर्वक सम्भावना की जाती है, वहाँ 'उत्प्रेक्षा' होती है।

यह उत्प्रेक्षा [उत् + प्र + ईक्षण—प्रधानता से बलपूर्वक देखना]

(१) उपमेय में उपमान की [अवस्तु में वस्तु की]
(२) अकारण में कारण की [अहेतु में हेतु की]
(३) अनुद्देश्य में उद्देश्य की [अफल में फल की]

की जा सकती है, इसलिए इसके तीन भेद हैं—

(१) वस्तूत्प्रेक्षा
(२) हेतूत्प्रेक्षा
(३) फलोत्प्रेक्षा

इस अलङ्कार के वाचक शब्द मनु, मानहुँ, मानों, जनु, जानो, जानहु, मनो, खलु इत्यादि हैं। इसके भेद-उपभेद इस प्रकार हैं—
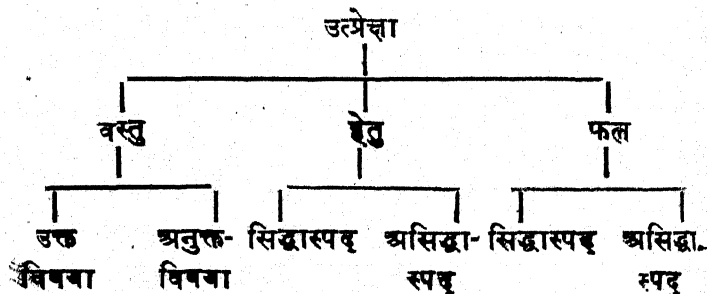
(१) वस्तूत्प्रेक्षा (स्वरूपोत्प्रेक्षा)

जहाँ एक वस्तु में दूसरी वस्तु की सम्भावना की जाती है वहाँ वस्तूत्प्रेक्षा अलंकार होता है—

यदि उत्प्रेक्षा का विषय कह कर उत्प्रेक्षा की जाती है, तो 'उक्तविषया' और बिना कहे ही उत्प्रेक्षा करली जाती है तो 'अनुक्तविषया' होती है।

उक्तविषया

(१) सोहत ओढ़े पीतपट श्याम सलोने गात।
मनो नीलमणि शैल पर आतप परयो प्रभात।
(बिहारी : सतसई)

(२) उभय बीच सिय सोहति कैसी। ब्रह्म जीव बिच माया जैसी।
बहुरि कहउँ छवि जस मन बसई। जनु मधुमदन मध्य रति लसई।
उपमा बहुरि कहउँ जिय जोही। जनु बुध विधु बिच रोहिनि सोही
(तुलसी : रामचरित मानस)

(३) कंचन रेख कसौटी कसी। जनु घन महँ दामिनि परगसी।
सुरुज किरिन जनु गगन विसेखी। जमुना माँह सुरसती देखी
(जायसी : पद्मावत)

(४) नील परिधान बीच सुकुमार खिल रहा मृदुल अधखुला अंग।
खिला हो ज्यों बिजली का फूल मेघवन बीच गुलाबी रंग।
(प्रसाद : कामायनी)

(५) रूप गंध रस देख गिरा को केवल यह उपमान मिला,
वसुधा के उपवन में मानों पारिजात का सुमन खिला।
(सुधीन्द्र : जौहर)

अनुक्तविषया

यह सकल दिशाएँ आज रोसी रही हैं।
यह सदन हमारा है हमें काट खाता। (हरिऔध : प्रिय प्रवास)

(२) हेतूत्प्रेक्षा

जहाँ अहेतु में हेतु की सम्भावना की जाय, अर्थात् जो वास्तविक कारण न हो उसे कारण कल्पित कर लिया जाय। यदि उत्प्रेक्षा (सम्भावना) का आधार सिद्ध अर्थात् सत्य हो तो सिद्धास्पद अन्यथा असिद्धास्पद होगी।

उदाहरण

असिद्धास्पद

(१) सहस किरिन जो सुरुज दिपई।
देखि लिलार सोउ छपि जई।
(जायसी : पद्मावत)

[सूर्य छिपता अवश्य है, पर उसके छिपने का हेतु (कारण) पद्मावती का ललाट देखकर लज्जित होना कवि कल्पित है]

(२) हँसत दसन अस चमके पाहन उठे झरक्कि।
दारिउँ सरि जो न कै सका, फारेउ हिया दरक्कि।
(जायसी : पद्मावत)

(१) उपमा हरि तन देखि लजाने
कोउ जल में, कोउ बनहिं रहे दुरि कोऊ गगन उड़ाने।
मुख देखत शशि गयो अम्बर को तडित दसन छवि हेरो।
मीन कमल कर चरण नयन डर जलमाँ कियो बसेरो।
भुजा देखि अहिराज लजाने, बिवरनि पैठे धाय।
कटि निरखत के हरि डर मान्यो वन-बिच रह्यो दुराय।
[उपमानों का लज्जित होना असिद्ध आधार है] [सूरदास]

सिद्धास्पद

(१) अरुण भये कोमल चरण भुवि चलिवे तैं मानु"

(भाषा : भूषण)

(पृथ्वी पर चलने से चरणों का लाल हो जाना सिद्ध कल्पना है)

(२) लाईं श्री मिथिलेश सुताको रंगालय में सखियों साथ।
विश्व विजय सूचक वरमाला लिये हुए थीं जो निज हाथ॥
लज्जा कांति और भूषण का उठा रहीं थीं अतुलित भार।
मन्द-मन्द चलती थीं मानों इसी हेतु वह अतिसुकुमार॥

(सीता जी का मंद गमन स्वाभाविक है, न कि लज्जा कांति व आभूषण के भार से वे मन्द चल रहीं हैं। परन्तु जिस 'भार उठाने' का आश्रय लिया है वह सिद्ध है—भार उठाने के कारण मन्द गमन होना सम्भव है।)

(३) फलोत्प्रेक्षा

जहाँ अनुद्देश्य में उद्देश्य का सम्भावना की जाती है अर्थात् जो उद्देश्य नहीं है उसे उद्देश्य (फल) कल्पित किया जाता है—वहाँ 'फलोत्प्रेक्षा' होती है।

यदि उत्प्रेक्षा का आधार सिद्ध (सत्य) हो तो सिद्धास्पद और कल्पित हो तो 'असिद्धास्पद' होगी।

उदाहरण

सिद्धास्पद

(१) दुवन सदन सबके बदन सिव-सिव आठो जाम।
निज बचिबे को जपत जनु तुरकौ हर को नाम।

[भूषण : शिवराज भूषण]

(२) लंक मनहु कुच धरन को कसी कनक की दाम

असिद्धास्पद

(१) कनक दुवादस बानि होहि चह सोहाग वह माँग।
सेवा करहिं नखत सब, उये नखत जस गाँग।

[जापसी : पदमावत]

(२) पुहुप सुगंध करहिं एहि आसा।
मकु हिरकाइ लिए हम्ह पास।

[,,]

(३) तो पद समता को कमल जल सेवत इक पायँ।

गम्योत्प्रेक्षा

कभी-कभी बिना वाचकों के भी उत्पेक्षा की जाती है, वहाँ 'गम्योत्प्रेक्षा' होगी।

(१) निरख सखी ये खंजन आये,
फेरे उन मेरे रंजन ने नयन इधर मनभाये !

[मैथिली० : साकेत]

(२) तारक चिन्ह दुकूलिनी पी-पीकर मधु पात्र,
उलट गई श्यामा यहाँ रिक्त सुधाधर-पात्र !

[,,]

कुछ आचार्यों तथा कवियों ने जैसे केशव ने 'अपह्नुति' के साथ उत्प्रेक्षा की है। उसे 'सापह्नवोत्प्रेक्षा' कहा जाता है।

अतिशयोक्ति [Hyperbole]

जहाँ वर्ण्य विषय की लोकमर्यादा का उल्लंघन करते हुए प्रशंसा की जाती है, वहाँ 'अतिशयोक्ति' होती है।

यह अतिशयोक्ति लोक सीमोलंघन रूप मानी गई है[1]:—

(क) सम्बन्धातिशयोक्ति:—जहाँ किसी योग्य (सक्षम) को अयोग्य और अयोग्य (अक्षम) को योग्य दिखाकर 'अतिशयोक्ति' की गई हो।

(ख) भेदकातिशयोक्ति :—जहाँ उपमेय का अन्यत्व वर्णन हो वहाँ भेदकातिशयोक्ति अलंकार होता है—इसमें भेद न होने पर (अभेद में) भी भेद वर्णन किया जाता है—

(ग) रूपकातिशयोक्ति :—इसमें रूप वर्णन या अन्य गुण-वर्णन लक्ष्य रहता है इसलिये इसे रूपकातिशयोक्ति कहना चाहिए। इसमें भेद होते हुए भी अभेद वर्णन किया जाता है।

---
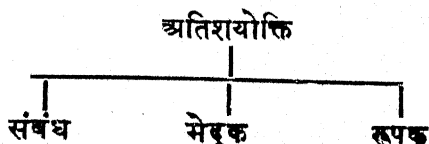
१ है सम्बन्ध असम्बन्धाक्रम, चंचल, अतिशय, भेदक, रूपक।

(४) अक्रमातिशयोक्ति—जहाँ कारण और कार्य का एक ही काल में बताया जाय वहाँ अक्रमातिशयोक्ति अलंकार होता है।

(५) चंचलातिशयोक्ति—जहाँ कारण के ज्ञान होते ही (देखते या सुनते ही) कार्य हो जाये वहाँ चंचलातिशयोक्ति अलंकार होता है।

(६) अत्यन्तातिशयोक्ति—जहाँ कारण के प्रथम ही कार्य का होना कहा जाय वहाँ अत्यन्तातिशयोक्ति अलंकार होता है। इनमें घटना का क्रमवर्णन उद्दिष्ट है, इसलिए घटनातिशयोक्ति कहना चाहिए। इस प्रकार अतिशयोक्ति का वस्तु—वर्णानुसार व घटना क्रमानुसार चक्र निम्न प्रकार का होगा—

अतिशयोक्ति

- वस्तु वर्णनानुसार
  - संबंध
  - भेदक
  - रूपक
- घटना क्रमानुसार
  - अक्रमा
  - चंचला
  - अत्यन्ता

(क) सम्बन्धातिशयोक्ति

[सक्षम को अक्षम और अक्षम को सक्षम दिखाना]

सक्षम को अक्षम
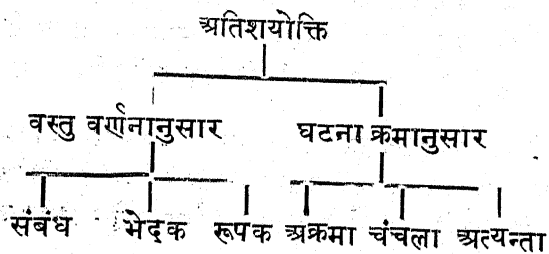
(१) जो सुख भा सिय मातु मन देखि राम वर वेश।
सो न सकहिं कहि कलपसत, सहस सारदा सेष॥

(तुलसी)

[शारदा और शेष वर्णन करने में सक्षम हैं—फिर भी उन्हें अक्षम बताया गया है।]

(२) कोटिहु बदन नहिं बनै बसत जगजननि सोभा महा।
सकुचहिं कहत श्रुति, शेष सारद, मन्दमति तुलसी कहा?

(३) जो अबाध आनन्द मिला फिर उसको कौन बखानेगा।
स्वयं शारदा थक जावेगी, शेष पराजय मानेगा॥

अक्षम को सक्षम

(१) राघव की चतुरंग चमूचय को गनै केसवराज समाजनि।
सूर तुरंगन के अरुझैं पद तुंग पताकन की पट साजनि॥

[राम की सेना की पताकायें इतनी ऊँची थीं कि उनमें देवताओं के घोड़ों के पद उलझते थे। पताकाओं की ऊँचाई को अक्षम होते हुए भी सक्षम बताया है।]

(२) निति गढ़ बाँचि चलै ससि सूरू।
नाहित होय बाजि रथ चूरू॥ (जायसी, पद्मावत)

(३) देख लो साकेत नगरी है यही।
स्वर्ग से मिलने गगन में जा रही॥

[मैथिलीशरण : साकेत]

(ख) भेदकातिशयोक्ति

जहाँ वस्तुतः भेद न होते हुए भी (अन्य, और, और ही, न्यारा, निराला आदि भेदक शब्दों से) वर्ण्य की अलौकिक विशेषता दिखाई जाती है वहाँ 'भेदकातिशयोक्ति होती है ।

उदाहरण

(१) अनियारे दीरघ दृगनि कितीन तरुनि समान ।
यह चितवनि औरे कछू जेहि बस होति सुजान ॥

(बिहारी)

[यहाँ जिस 'चितवनि' का वर्णन है वह साधारण दृष्टि सी होती हुई भी उससे 'औरे' शब्द के द्वारा भिन्न बताई गई है ।]

(२) औरे हँसनि विलोकिवो औरे वचन उदार ।
तुलसी ग्राम बधूनि के देखे रह न संभार ॥

(३) जगत को जैतवार जीत्यो अवरंगजेब,
न्यारी रीति भूतल निहारी सिवराज की ।

[भूषण : शिवराज भूषण]

(ग) रूपकातिशयोक्ति

जहाँ उपमेय का इतना गुणोत्कर्ष दिखाया जाता है कि केवल उपमान द्वारा ही उपमेय का बोध होता है, वहाँ "रूपकातिशयोक्ति" होती है ।

नखशिखवर्णन में कविगण प्रायः इसी का प्रयोग करते हैं।

उदाहरण

(१) पन्नग पंकज मुख गहे खञ्जन वहाँ वईठ।
छत्र सिंहासन, राज धन ताकहँ होइ जो दीठ॥

[पन्नग (सर्प—वेणी), पंकज (मुख), खंजन—नेत्र]

[जायसी : पद्मावत्]

(२) खञ्जन, सुक, कपोत मृगमीना। मधुप निकर कोकिला प्रवीना।
कुंदकली दाड़िम दामिनी। सरद कमल ससि अहिभामिनी॥
बरुन-पास मनोज धनु हंसा। गजकेहरि निज सुनत प्रसंसा॥
श्रीफल कमल कदलि हरखाही। नेकु न संक सकुच मनमाही॥
सुनु जानकी तोहिं बिनु आजू। हरषे सकल पाय जनु राजू॥

[तुलसी रा० च० मा०]

खंजन—नेत्र, शुक—नासिका, कपोत—कंठ, मृग मीन-नेत्र; मधुप-केश, कोकिला-वाणी, कुंदकली-भौंरे दाड़िम-दन्त; दामिनी—मुसकान; शरद्कमल, ससि-मुख; अहिभामिनी—वेणी, वरुणपास—केशराशि; मनोज-धनु—भ्रू; गज=गति; केहरि - कटि, श्रीफल-स्तन; कमल—हाथ; कदली—जंघा।]

इसी प्रकार का वर्णन सूर ने भी किया है—

(३) अद्भुत एक अनूपम बाग।
युगल कमल पर गज क्रीड़त है तापर सिंह करत अनुराग॥
हरि पर सरवर, सर पर गिरिवर, गिरि पर फूले कंज पराग।
रुचिर कपोत वसै ता ऊपर ता ऊपर अमृत फल लाग॥
फल पर पुहुप, पुहुप पर पल्लव, तापर सुक, पिक मृग मद काग।
खंजन धनुष चन्द्रमा ऊपर ताऊ पर इक मनिधर नाग॥

[सूरदास]

[युगलकमल = चरण; गज = जंघा; सिंह = कटि, सरवर= नाभि; गिरिवर = वक्षस्थल; कञ्ज = मुख, कपोत = कंठ, अमृत-फल = चिवुक (ठोड़ी), पुहुप = गोदना, पल्लव = ओष्ठ, शुक = नाक, पिक = वाणी, मृगमद = कस्तूरी विंदु, काग = काकपक्ष, केशपाटी, खञ्जन = नेत्र, धनुष = भ्रू, चन्द्रमा = ललाट, मणि-धर नाग = शीशफूल वाली वेणी—इस प्रकार यह राधा का नख-शिख वर्णन है।]

चपलातिशयोक्ति

जहाँ कारण के ज्ञान (दर्शन, श्रवण, स्पर्श, प्रतीत आदि) होते ही कार्य हो जाता है, वहाँ 'चपलातिशयोक्ति' होती है। बिजली के से वेग के कारण ही इसे 'चपलातिशयोक्ति' या 'चंचलातिशयोक्ति'[1] कहते हैं।

उदाहरण

(१) तुलसी सो राम के सरोज-पाणि पर्सत ही,
टूट्यो मनो बारें ते पुरारि ही पढ़ायो है।

(राम के हाथ से छूते ही पिनाक टूट गया !) [तुलसी,]

(२) आयो आयो सुनत ही शिव सरजा तुव नाँव।
बैरि नारि दृग जलन सों, बूढ़ि जात अरि गाँव।
[भूषण : शिवराजभूषण]

(३) आगम श्री रघुनाथ सुने मुनिमंडली के मन-बन्धन छूटे।
[लछिराम]

१—मतिराम ने इसे 'चञ्चलातिशयोक्ति' कहा है।

अक्रमातिशयोक्ति

[कारण और कार्य की एक साथ घटना]

उदाहरण

(१) दोऊ बातैं छूटी गजराज की बराबर ही,
पाँव ग्राह-मुख में पुकार निज मुखतें।

[मतिराम]

[गजेन्द्र की आर्त्तवाणी और ग्राह के मुख से उसका पाँव छूटना कारण और कार्य एक साथ घटित हुए]

(२) उठ्यो संग गजकर कमल चक्र चक्रधर हाथ।
करतें चक्र सु चक्र सिर धर तें बिलायो साथ।

(३) वह शर इधर गांडीव से गुण से भिन्न जैसे ही हुआ।
धड़ से जयद्रथ का इधर सिर छिन्न वैसे ही हुआ।

[जयद्रथ : वध]

(४) पृथ्वी राज ! उधर तुम पहुँचे पाश इधर बढ़ चढ़ आया !
तुम तो उधर बँधे पाशों में शाप।इधर शिर पर छाया !!

[सुधीन्द्र : जौहर]

(५) इत सर सारंग पै चढ़त चढ़ि रागत रणराग।
उतर अरि अँगना अंग तें उतरत सहज सुहाग।

[वियोगी हरि : वीरसतसई]

अत्यन्तातिशयोक्ति

जहाँ कारण-कार्य के स्वाभाविक क्रम का विपर्यय हो जाता है अर्थात् कारण के पूर्व ही कार्य हो जाता है, वहाँ 'अत्यन्तातिशयोक्ति' होता है।

उदाहरण

(१) पद पखारि जलपान करि आप सहित परिवार।
पितर पार करि प्रभुहिं पुनि मुदित गयऊ लै पार ॥

(२) हनूमान की पूँछ में लगन न पाई आग।
लंका सिगरी जरि गई गये निसाचर भाग।

(४) आवत गजेंद्र की पुकार मग आधे मिली।
लौटत मिल्यौ त्यौं पच्छिराज मग आधे मैं।

["रत्नाकर"]

व्यतिरेक

जहाँ (१) उपमेय में उपमान से गुणातिरेक द्वारा या (२) उपमान की हीनता द्वारा उपमेय को उपमान से उत्कृष्ट दिखाया जाता है, वहाँ 'व्यतिरेक' होता है। इस अलंकार में समता का आधार कहते हुए भी उपमेय उपमान से गुण का विशेष अतिरेक दिखाया जाता है।

(वि = विशिष्ट + अतिरेक = पृथक भाव)

उपमान से उपमेय का वैशिष्टय ही व्यतिरेक है।

उदाहरण

[उपमेय का गुणातिरेक]

(१) मुख है अम्बुज सो सही मीठी बात बिसेख।

[यहाँ मुख में कमल से मीठी बात, की अधिकता दिखाई गई है।]

(२) सिय मुख सरद कमल जिमि किम कहि जाय ?
तिसि मलीन वह, निसि दिन यह विगसाय।

[बरवैरामायण : तुलसी]

(४) साधु उच्च है शैल सम, किन्तु प्रकृति सुकुमार।

उपमान का अपकर्ष

(१) जन्म सिंधु पुनि बहु विष दिन मलीन सकलंक।
सिय मुख समता पाव किमि चंन्द बापुरो रंक ?

[तुलसीदास : रा० च० मा०]

(२) जिनके जस प्रताप के आगें।
ससि मलीन, रवि सीतल लागे।

उभयताकी]

"का सरवरि तेहि देउँ मयंकू।
चंद कलंकी वह निकलंकू।
औ चाँदहि पुनि राहु गरासा।
वह बिनु राहु सदा पर गासा।"

[पद्मावत : जायसी]

कमल कण्टकित सजनी कोमल पाईं।

तिसि मलीन यह प्रफुलित नित दरसाई।

(ख)

(१) पर कहाँ कण्टकित नाल सुपुलकित भुजसा ?

[साकेत]

(२) स्वर्ग की तुलना उचित ही है यहाँ,
किन्तु सुर सरिता कहाँ, सरयू कहाँ ?
वह मरों को मात्र पार उतारती,
यह यहीं से जीवितों को तारतीं।

—'साकेत' (गुप्त)

(३) सखि वा में जगै छन जोति छटा
इत पीत पटा दिन रैन मढ़ो।
वह नीर कहूँ बरसै सरसै
यह तो रसजाल सदाहीं अड़ो।
वह स्वेत है जात अपानिप है
यह रंग अलौकिक रूप गड़ो।
कह 'दास' बराबरि कौन करै
घन औ घनस्याम सों बीच बड़ो।

—'दास'

प्रतीप

जहाँ वर्ण्य (अर्थात् उपमेय) को किसी अवर्ण्य (उपमान) का उपमान कर दिया जाता है अर्थात् जहाँ उपमा

के स्वाभाविक क्रम को उलट कर उपमेय को उपमान और प्रसिद्ध उपमान को उपमेय कर दिया जाता है, वहाँ 'प्रतीप' होता है।

'प्रतीप' का अर्थ विलोम, विपरीत, उलटा है—इसलिए इसे 'विपरीतोपमा' (उलटी उपमा) भी कहा गया है। उपमा में वर्ण्य या प्रस्तुत को 'उपमेय' किया जाता है और अवर्ण्य या अप्रस्तुत को उपमान। परन्तु इसमें इसका विपरीत हो जाता है।

इसके पांच—भेद होते है।

(क)

(१) प्रथम प्रतीप

इसमें प्रसिद्ध उपमान (अवर्ण्य) को उपमेय बनाया जाता है।

(क)

(प्रेयसी के प्रति उक्ति)

बादल थारा लट सा काला लहर लहर छै लहरावै।
इन्द्र धनुष यो रंगरंगीलो थारो लहरयो लहरावै॥

(ख)

(१) सन्ध्या फूली परम प्रिय की कान्ति सी है दिखाती।
पाया जाता वर वदन सा ओप आपिय में है।

—हरिऔध : प्रियप्रवास

(२) दूर दूर तक विस्तृत था हिम
स्तब्ध उसी के हृदय समान।
[प्रसाद : कामायनी]

(३) कौन जाने जायगा न यों ही दिन दूसरा।
आई तुझ सी ही यह सन्ध्या धूलि धूसरा।
[मैथिलीशरणगुप्त : यशोधरा]

(२) द्वितीय प्रतीप

जहाँ उपमेय कल्पित उपमान के द्वारा उपमेय (वर्ण्य) का निरादर (तिरस्कार) होता है—

(१) गर्व करउ रघुनन्दन जिनि मन माँह।
देखउ आपनि मूरत सिय कै छाँह॥

यहाँ उपमेय रघुनन्दन का, सीता (अन्य उपमेय) के द्वारा, तिरस्कार दिखाया गया है।

(२) का घूँघट मुख मूँदहु अबला नारि
चन्द सरग पै सोहत इहि अनुहारि॥ [तुलसी]

(ख)

(३) "करती तू निज रूपका गर्व किन्तु अविवेक।
रमा उमा शशि शारदा तेरे सदृश अनेक॥"

(४) प्रिये, तुम्हारी इन आँखों में, क्या इतनी मादकता है—
जितनी स्वयं तुम्हारे स्वर में, : इमें किन्तु अधिकता है।

(३) तृतीय प्रतीप

यहाँ प्रसिद्ध उपमान का उपमेय के द्वारा तरस्कार दिखाया जाता है—

(क)

(१) अवनि हिमाद्रि समुद्र जनि, करहु वृथा अभिमान।
सान्त, धीर गंभीर है, तुम सम राम सुजान॥

यहाँ शान्ति, धीरता, गंभीरता में प्रसिद्ध उपमानों (पृथ्वी, हिमालय, समुद्र) का उपमेय राम के आगे तिरस्कार कराया गया है।

(२) गरव करत कत चाँदनी, हीरक छीर समान।
फैली इती समाज गत, कीरति सिवा खुमान॥

(ख)

(३) करता है तू गर्व व्यर्थ पाव, अपने मन में।
तुझसे बढ़कर अधिक कठिनता दुष्ट वचन में॥

इसके अन्य चतुर्थ तथा पंचम भेद तृतीय के ही समान हैं। उनमें विशेष सूक्ष्म अन्तर नहीं है। अतः उनका अन्तर्भाव तृतीय से ही हो सकता है।

(४) चतुर्थ प्रतीप

इसमें उपमेय के आगे उपमान की अयोग्यता दिखाई जाती है—

उदाहरण

(१) विक्रम में विक्रम, धरम सुत धरम में।
धुंध मार धीर में, धनेस वारों धन में॥

(२) बहुरि विचार कीन्ह—मन माँहीं।
सीय वदन सम हिमकर नाँहीं॥

(३) पुण्य तपोवन की रज में यह खेल खेल कर खड़ी हुई।
आश्रम की नव लतिकाओं के साथ-साथ यह बड़ी हुई॥
पर समता कर सकी न उसकी राजोद्यान मल्लियाँ भीं।
लज्जित हुईं देखकर उसको नंद विपिन बल्लियाँ भीं॥

[यहाँ नन्दन-वन की लतिकाओं को उपमेय शकुन्तला के सादृश्य के अयोग्य सूचित किया है—

(५) पंचम प्रतीक

इसमें कैमर्थ्य* द्वारा उपमेय के आगे उपमान की अनावश्यकता वर्णित की जाती है।

उदाहरण

(१) कुन्द कहा, पय बृन्द कहा, अरु चन्द कहा सरजा जस आगे!
भूषनभानु कृशानु कहा ऽब खुमान प्रताप महीतल पागे!
राम कहा द्विजराम कहा, बलराम कहा, रन में अनुरागे!
बाज कहा, मृगराज कहा, अति साहस मैं सिवराज के आगे!

(२) रावभावसिंह जू के दान की बड़ाई जागे,
कहा कामधेनु है, कछू न सुरतरु है।

(३) अंमिय झरत चहुँ ओर सों नयन ताप हरि लेत।
राधाजू को बदन अस, चन्द उदय केहि हेत॥

---

* 'उपमान का कार्य जब उपमेय ही भली प्रकार कर सकता है, फिर उपमान की क्या आवश्यकता है'—इस कथन को कैमर्थ्य कहते हैं।

(४) है स्वतन्त्रता कण कण के आगे स्वर्ण महल नीरस निस निस्सार।
स्वतन्त्रता के चरण वरण पर अमर स्वर्गिक सुख बलिहार॥
[सुधीन्द्र, जौहर]

गम्योपम्याश्रित (गम्य + औपम्य—आश्रित) वर्ग

(१) तुल्ययोगिता (Equal Fairing)

जहाँ अनेक 'प्रस्तुत' विषयों का अथवा अनेक 'अप्रस्तुत' विषयों का क्रिया अथवा गुण द्वारा एक ही धर्म दिखाया जाता है, वहाँ 'तुल्ययोगिता' (तुल्ययोग : एकता) होती है।

[तुल्ययोगिता जहँ धरम जहँ वरन्यन को एक।
कहूं अवरन्यन को कहत, भूषन वरनि विवेक[१] ॥]

तुल्ययोगिता प्रथम—

यहाँ वर्ण्य या उपमेय अथवा अवर्ण्य या उपमान कई होते हुए भी उनका समान धर्म एक ही बार दिखाया जाता है।

'तुल्ययोगिता' में औपम्य (उपमेय—उपमान भाव) गम्य (Understood) रहता है—कथित नहीं होता। हाँ वह एक समान धर्म द्वारा व्यंजित होता है। उपमा की भाँति स्पष्ट धर्म वाचक आदि का विधान नहीं होता।

---

१ भूषण, शिवराजभूषण।

प्रस्तुतों का एक धर्म—

उदाहरण

(१) रंगविलास महल मन्दिर का रण-प्रांगण की ओर चला।
जीवन का क्षण तन-तन का कण, धरणी का तृण-तृण बदला॥

[यहाँ जीवन का कण आदि प्रस्तुतों का एक ही धर्म बदला कहा गया है।]

(२) वचन की रचना रस से भरी
मुख व्रजाधिप की रमणीयता।
उतरती न कभी चित से रही,
सरलता, अतिप्रीति, सुशीलता।

[यहाँ कृष्ण की 'सरलता', 'अतिप्रीति', 'सुशीलता' विषय वर्ण्य, अतः प्रस्तुतः हैं। इन तीनों प्रस्तुतों का एक ही धर्म एक बार ही 'उतरती न कभी चित से रही' कहा गया है।]

(३) लीक लीक तीनों चलें—कायर, क्रूर, कपूत।
लीक छाँड़ि तीनों चलें—सायर, सिंह, सपूत॥

[यहाँ भी (१) कायर, क्रूर; कुपुत्र तीनों प्रस्तुतों का एक ही धर्म (लीक लीक चलना) कहा गया है। इसी प्रकार (२) शायर, सिंह और सुपुत्र का भी एक ही धर्म (लीक छोड़कर चलना) कहा गया है।]

(४) कहै यहै श्रुति सुमृत्यौ यहै सयाने लोग।
तीन दबावत निसक ही पावक, राजा, रोग॥

यहाँ पावक, राजा और रोग तीनों प्रस्तुत हैं किन्तु एक ही धर्म (दबाना) एक बार ही कथित है।

अनेक धर्म—

निम्नलिखित दोहे में यदि श्लेष को ग्रहण करदें, तो यही अलंकार है परन्तु अनेक धर्म एक बार कहे गये हैं। इसमें प्रायः श्लेष की सहायता ली जाती है—

> चरन धरत, चिन्ता करत, नींद न चाहत सोर।
> सुवरन को ढूँढ़त फिरत, कवि, व्यभिचारी, चोर॥

[कवि, व्यभिचारी और चोर प्रस्तुत है, इनके अनेक धर्म हैं (१) चरन धरत (२) चिन्ता करत (३) नीद सोर न चाहत (४) सुवरन को ढूँढ़त फिरत।]

यहाँ वस्तुतः तुल्ययोगिता ही प्रधान अलंकार है, 'श्लेष' सहायक मात्र है।

सूचना—कभी कभी प्रस्तुत और अप्रस्तुत का एक धर्म भी हो जाता है।

> नर की अरु नरु नीर की एकै गति करि जोइ।
> जेतो नीचो है चलै ते तो ऊँचो होइ॥

अप्रस्तुतों का एक धर्म—

(१) रति, रंभा, भारती भवानी तुम पर पानी भरती हैं।

यहाँ 'तुम' प्रस्तुत है और रति रंभा भारती भवानी चार अप्रस्तुत हैं। इन चारों का एक ही धर्म 'पानी भरती हैं' कथित है।

(२) लखि तेरी सुकुमारता एरी या जग माँहि।
कमल गुलाब कठोर सो किहिं को लागत नाँहिं ?

अनेक धर्म

(१) रति, रंभा, भारती भवानी, तुम पर पानी भरती हैं।
जीती कृपा तुम्हारी पाकर, बिना तुम्हारे मरती हैं ॥

यहाँ रति रंभा आदि अप्रस्तुतों के तीन धर्म (१) पानी भरना (२) कृपा पाकर जीना और (३) बिना तुम्हारे मरना कथित हैं।

दूसरी तुल्ययोगिता—

जब प्रस्तुत की परस्पर विरोधी विषयों में भी समान धर्म या वृत्ति वर्णित हो तो वहाँ दूसरी 'तुल्ययोगिता' होती है।

उदाहरण

(१) प्रफुल्लता प्राप्त जिसे न राज्य से,
न म्लानता भी बनवास से जिसे।
मुखाम्बुज श्री रघुनाथ की वही,
सुखप्रदा हो हमको सदैव ही।

यहाँ रघुनाथ राम के मुखाम्बुज की श्री (शोभा) (१) राज्य प्राप्ति तथा (२) वनवास में भी म्लान नहीं हुई।

२) रामभाव अभिषेक समय जैसा रहा,
वन जाते भी सहज सौम्य वैसा रहा।

(वर्षा हो या ग्रीष्म सिन्धु रहता वही,
मर्यादा की सदा साक्षिणी है नहीं।)

(साकेत)

(१) यहाँ पहली दो पंक्तियों में—राम का भाव दो भिन्न विषयों में भी एक सा रहा है।

(२) इसी प्रकार, दूसरी दो पंक्तियों में सिन्धु का वर्षा में या ग्रीष्म में एक सा रहना कहा गया है।

तीसरी तुल्ययोगिता—

यहाँ प्रस्तुत की उत्कृष्ट गुण वालों के साथ गणना की जाती है।

(१) शिव दधीचि के सम सुयश इसी भूर्ज तरु ने किया।
जड़ भी होकर के अहो त्वचा-दान इसने दिया॥

[परन्तु यहाँ के सम में उपमा हो गई है—अतः इसे उपमा का एक भेद भी कहा जा सकता है।]

(२) कामधेनु अरु काम तरु चिन्तामनि मन मानि।
चौथो तेरो सुयश हूँ, है मनसा फलदानि॥

[यहाँ राजा के यश (प्रस्तुत) की कामधेनु, कामतरु, चिन्तामनि आदि वांछित काम देने वाली उत्कृष्ट वस्तुओं के साथ गणना करके उन्हीं के समान वांछित फलदायक वर्णित किया गया है।]

"दीपक"

प्रकृत (वर्ण्य) और अप्रकृत (अवर्ण्य) दोनों के किसी समान गुण का (क्रिया द्वारा या विशेषण द्वारा) वर्णन किया जाता है, अथवा एक कारक संज्ञा का अनेक क्रियाओं से सम्बन्ध दिखाया जाता है; वहाँ 'दीपक' अलङ्कार होता है।

तुल्ययोगिता में केवल उपमेय (प्रस्तुत) या केवल उपमान (अप्रस्तुत) के समान धर्म की तुल्यता (एकता) दिखाई जाती है—परन्तु दीपक में उपमेय तथा उपमान दोनों के समान धर्म की तुलना (एकता) दिखाई जाती है।

उदाहरण

रहिमन पानी राखिये बिन पानी सब सून।
पानी गये न ऊबरे मोती मानुस चून॥

[यहाँ मनुष्य प्रस्तुत है, मोती तथा चून (आटा) अप्रस्तुत इन सबकी धर्म-एकता दिखाई गई है।]

तुल्ययोगिता (प्रथम) के उदाहरण में इसे समाविष्ट किया जा सकता है, फिर भी आचार्यों ने इसे पृथक् माना है।

अन्य उदाहरण

(१) सेवक सठ नृप कृपन कुनारी। कपट मित्र शूल समचारी॥

[यहाँ शठ सेवक, कृपण नृप, कुवारी और कपटी मित्र

में से एक अवश्य प्रस्तुत है, शेष अप्रस्तुत। यहाँ सबका एक धर्म कथन किया गया है।]

(२) ढोल गँवार सूद्र पशु नारी। ये सब ताड़न के अधिकारी ॥
(३) धीरज धर्म मित्र अरु नारी। आपति काल परखिये चारी ॥
(४) संगतें जती कुमंत्र ते राजा। मान ते ग्यान, पान ते लाजा ॥
प्रीति प्रनय बिनु मद ते गुनी। नासहि वेगि नीति अस सुनी ॥

[यहाँ राजा (प्रकृत) और जती, ज्ञान, लाज, प्रीति गुणी आदि (अप्रकृतों) का समान धर्म कहा गया है]

(क) कारक दीपक

जहाँ अनेक क्रियाओं का एक ही कारक दिखाया जाता है, वहाँ कारक-दीपक होता है।

उदाहरण

[जहाँ कारक का अर्थ कर्त्ता है]

(१) "आती और जाती रहती हैं चैन पाती नहीं,
मानो खोजती हैं उसे सासें घबराई सी।"

[यहाँ 'आती', 'जाती', रहती और चैन पाती, तथा 'खोजती' क्रियाओं से 'सासें' का सम्बन्ध दिखाया गया है।]

(२) आपानक आ कुम्भ खुलें फिर, मणिमाणिक प्याले छलकें।
झलके अंगूरी अंगों में पीयें, छकें, मुदें, पलकें ॥

कर्त्ता (पलकों) की अनेक क्रियायें (पीयें, छकें, मुदें) हैं

[जहाँ कारक का अर्थ सभी कारक है]

कारक पर आधारित होने के कारण इसमें कर्म, करण सम्प्रदान, अपादान, सम्बन्ध, अधिकरण आदि से अनेक प्रकार हो सकते हैं।

अन्य उदाहरण

(२) "है भरी अतुल शोभायें सुन्दर सुरभित उपवन में।
द्रुम-द्रुम में, लता-लता में, तृण-तृण में, सुमन-सुमन में ॥

[गो० श० सिंह, कादम्बिनी]

(३) सजे तुरग पीठों पर सैनिक, सैनिक पीठों पर ढालें।
कर-कर में कौशल बलशाली, विद्युत सी वर करवालें ॥

[सुधीन्द्र, जौहर]

(४) "इन्दु की छवि में, तिमिर के गर्भ में,
अनिल की ध्वनि में, सलिल की वीचि में।
एक उत्सुकता विचरती थी सरल,
सुमन की स्मति में लताके अधर में।"

[पन्त : ग्रन्थि]

(ख) माला दीपक

जहाँ पूर्व वस्तु क्रमशः उत्तर वस्तु का एक धर्म (साधर्म्य) से सम्बन्ध कथित हो और इस प्रकार माला बन जाये, वहाँ मालादीपक होता है।

उदाहरण

(१) घन में सुन्दर बिजली सी, बिजली में चपल चमक सी।
आँखों में काली पुतली पुतली में श्याम झलक-सी ॥

[प्रसाद : आँसू]

[यहाँ पूर्व कथित वस्तु 'घन' का, उत्तर कथित 'बिजली' इत्यादि का एक धर्म सम्बन्ध वर्णित है।]

(२) रस सो काव्य काव्य सों सोहत वचन महान्।
वचनत ही सों रसिक जन तिनसों सभा सुजान ॥

[पूर्व कथित 'रस' उत्तर कथित काव्य के उत्कर्ष का हेतु है। फिर काव्य से वचनों का, वचनों से रसिक जनों का—रसिक जनों से सभा का उत्कर्ष वर्णित है, सबका एक धर्म 'सोहत' कथित है।

सूचना

इसमें यदि साधर्म्य न हो और अन्य सम्बन्ध से माला बने, तो 'एकावली' अलंकार होगा।

(ग) आवृत्ति दीपक

जहाँ एक ही क्रिया द्वारा पद, अर्थ और पद-अर्थ की आवृत्ति घटित की जाती है—

(१) पदावृत्ति (जहाँ एक पद भिन्न-भिन्न अर्थों में अनेक बार हो।)

(२) अर्थावृत्ति (जहाँ एक अर्थ भिन्न-भिन्न पदों से अनेक बार हो।)

(३) पदार्थावृत्ति (जहाँ एक अर्थवाला पद अनेक बार हो।)

(१) पदावृत्ति (पद की आवृत्ति)

(१) शिर पर इसके स्वर्ण जड़ा है, आँखों में सुवर्ण बिखरा।
अन्तःपुर है सरस स्वर्ण से, कोषों में है स्वर्ण भरा ॥

(२) "बहै रुधिर, सरिता बहै, किरवानैं कढ़ि कोस।
वीरन बरहि वरांगना, वरहिं सुभट रन रोस॥"

[पदावृत्ति और यमक में भेद यह है कि पदावृत्ति में अनेक क्रिया पदों की ही आवृत्ति की जाती है।]

(२) अर्थावृत्ति (अर्थ की आवृत्ति)

(एकार्थवाची शब्द से)

(१) दौरहिं, संगर मत्त गज, धावहिं हय समुदाय।
नटहिं रंग में बहुनटी नाचहिं नट समुदाय॥

[यहाँ एकार्थवाची 'दौरहिं' और 'धावहिं' क्रियात्मक पदों की आवृत्ति है।]

(३) पदार्थावृत्ति (पद—अर्थ की आवृत्ति)

(१) तब इस घर में था तम छाया,
था मातम छाया गम छाया।
भ्रम छाया।

[बच्चन : मधुवाला]

(२) "लाज भरे, लाग भरे, लाभ भरे, लोभ भरे
लाली भरे, लाड भरे लोचन हैं लाल के।"

(३) पेट चढयो पलना पलका चढि पालकि हू चढि मोह मढ़यो रे
चौक चढ़यो चितसारि चढ़यौ गजबाजि चढ़यौ गढ़ गर्व चढ़यौ रे।
व्योम विमान चढ़यौई रह्यौ कहि केसव सो कबहूँ न पढयो रे
चेतत नाहिं रह्यो चढि चित्त सो चाहत मूढ़ चिताहू चढ़यो रे

[केशव]

सूचना

पदार्थावृत्ति और लाट अथवा वीप्सा आदि में अन्तर यह है कि पदार्थावृत्ति में केवल मात्र क्रिया पद ही आवृत्त होता है। लाट, वीप्सा, पुनुरुक्ति में अक्रिया पद आवृत्त होते है।

(घ) देहली दीपक

जहाँ दो वाक्यों या वाक्यांशों की संधि में ऐसे शब्द या पद का विधान किया जाता है जो दोनों खण्डों के साथ सम्बद्ध होकर उन्हें प्रकाशित करता है वहां देहली दीपक है।

परै एक पद बीच में दुहूं दिशि लागै सोय।
सो है दीपक देहली जानत है सब कोय।

(१) प्रिय तुमने प्यार किया (मुझको) उस दिन अपने से प्यार हुआ।

—सुधींद्र

[यहाँ मुझको शब्द दोनों ओर जुड़ता है]

(२) "दिन के बाद निशा (आती है) आमोदों के बाद विषाद।"

['आती है' क्रिया पद दोनों ओर प्रकाश डालता है।]

(३) "पिता मरण का शोक न सीता हर जाने का।"

[रा० च० मा०]

प्रतिवस्तूपमा

जहाँ उपमेय और उपमान वाक्यों का, भिन्न-भिन्न शब्दों द्वारा, एक ही धर्म कहा जाता है वहां प्रतिवस्तूपमा अलंकार होता है।

इसमें तीन विशेषतायें होती हैं—

(क) उपमेय वाक्य और उपमान वाक्य का निर्देश
(ख) दोनों वाक्यों का सम धर्म-निर्देश
(ग) भिन्न किन्तु समानार्थी वाचक शब्दों का प्रयोग

वस्तुतः 'प्रतिवस्तूपमा' एक प्रकार की उपमा ही है। दो उपमा वाक्यों का भिन्न शब्दों द्वारा यहाँ समधर्मी विनियोग होता है।

(क) दोनों वाक्यों का निर्देश

(१) चटक न छाँड़त घटत हू सज्जन नेह गँभीर।
फीको परे न बरु फटै रंग्यो चोल रंग चीर। [बिहारी]

[यहाँ चटकन 'छाँडत' और 'फीको न परै' एक ही अर्थ वाची भिन्न शब्दों से पूर्वार्ध उपमेय तथा उत्तरार्ध उपमान वाक्य का साम्य है।]

(२) सोहत भानु प्रताप सों, लसत, सूर धनु बान।

(ख) दोनों वाक्यों का समधर्म निर्देश

(१) एक समय जो ग्राह्य दूसरे समय त्याज्य होता है।
ऊष्मा में हिम के कम्बल का भार कौन ढोता है।
[गुप्त]

[उदाहरण में 'त्याज्य' और 'भार कौन ढोता है' शब्दों द्वारा दोनों वाक्यों का समधर्म निर्देश किया गया हैं]

(ग) भिन्न-किन्तु समानार्थी शब्दों का प्रयोग

(१) शोभित होता है सूर्य अपने प्रताप से।
लसता है सूर निज धनुष बाण से॥

['शोभित होता है' और 'लसता है' ये दो भिन्न किन्तु समानार्थी शब्द—एक ही धर्म का निर्देश करते हैं]

(प्रतिवस्तूपमा और वाक्यार्थोपमा)

प्रतिवस्तूपमा और वाक्यार्थोपमा में यह अन्तर है कि वाक्यार्थोपमा में 'जैसे' आदि समता सूची शब्द आता है, प्रतिवस्तूपमा में वह गम्य (undesrtood) रहता है।

(प्रतिवस्तूपमा और दृष्टान्त)

प्रतिवस्तूपमा में बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव नहीं होता, क्योंकि साधारण धर्म तो एक ही रहता है, केवल शब्द का भेद होता है—अतः यह दृष्टान्त से थोड़ा भिन्न है।

प्रतिवस्तूपमा में वस्तु-प्रतिवस्तु भाव रहता है दृष्टान्त में बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव।

'प्रतिवस्तूपमा' में दो वाक्यों में एक ही धर्म होता है किन्तु शब्द-भेद से उसका बोध होता है पर 'दृष्टान्त' में दोनों वाक्यो में धर्म भिन्न-भिन्न होने पर भी एक दूसरे में विम्ब प्रतिबिम्ब भाव रहता है, उसमें उपमेय उपमान और समान धर्म तीनों का बिम्ब प्रतिबिम्ब रहता है।

(प्रतिवस्तूपमा और अर्थान्तरन्यास)

'प्रतिवस्तूपमा' में एक वाक्य उपमेय दूसरा उपमान होता है, परन्तु 'अर्थान्तरन्यास' में उपमेय—उपमान भाव नहीं होता वरन् सामान्य का विशेष से अथवा विशेष का सामान्य से समर्थन किया जाता है।

मम्मट ने कहा है—

(प्रतिवस्तूपमा)

सामान्यस्य द्विरेकस्य यत्र वाक्य द्वये स्थिति

(दृष्टान्त)

दृष्टान्तः पुनरेतेषां सर्वेषां प्रतिबिम्बनम्

विशेष

पंडितराज जगन्नाथ के मतानुसार तो 'प्रतिवस्तूपमा' और 'दृष्टान्त' में विशेष अन्तर न होने से इनको एक ही अलंकार में परिगणित करना उचित है। वस्तुतः दोनों में अन्तर उपमावाची शब्द के प्रयोग से आ जाता है। 'प्रतिवस्तूपमा' में उपमावाची भिन्न शब्द एक ही धर्म का बोध कराते हैं। 'दृष्टान्त' में वे होते ही नहीं। 'दृष्टान्त' में बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव आवश्यक है। इससे दोनों को भिन्न माना ही जाना चाहिए।

उदाहरण

(१) दुसह दुराज प्रजान के, क्यों न बढ़ै दुखद्वन्द। [सामान्य]
अधिक अँधेरो जग करत, मिलि मावस रविचन्द्र ॥

[बिहारी]

[ख]

(२) कल कलानिधि को खल राहु भी,
निगलता करता बहु क्लांत है!
कुसुम-सा सुप्रफुल्लित बालिका—
हृदय भी न रहा सुप्रफुल्ल है!

(३) एक राज्य न हो बहुत से हों जहाँ,
राष्ट्र का बल बिखर जाता है वहाँ!
बहुत तारे थे अँधेरा कब मिटा,
सूर्य का आना सुना जब तब मिटा!

[गुप्त, साकेत]

दृष्टान्त (Examplefication)

दो वाक्यों (सामान्य-सामान्य अथवा विशेष-विशेष) में जो उपमेय और उपमान-वाक्य होते हैं—केवल बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव से समान धर्म दिखाया जाता है, वहाँ 'दृष्टान्त' होता है।

इसमें साधारण धर्म तथा वाचक शब्द नहीं लाया जाता। साथ ही उपमेय वाक्य और उपमान वाक्य का धर्म पृथक्-पृथक् होकर भी वे बिम्ब प्रतिबिम्ब सम्बन्ध वाले होते हैं। उपमेय वाक्य की झलक उपमान वाक्य में दिखाई देती है।

"दृष्टोऽन्तः निश्चयो यत्र स दृष्टान्तः"—दृष्टान्त का अर्थ है—'निश्चित निर्धारित।' इसमें निश्चित निर्धारण कराया जाता है—अर्थात् प्रकृत अर्थ को उसीके सदृश दूसरे अर्थ से से पुष्ट किया जाता है।

दृष्टान्त में कवि का वर्ण्य (प्रकृत) उपमान वाक्य होता है तथा सामान्य का सामान्य से अथवा विशेष का विशेष से समर्थन रहता है।

दृष्टान्त के अन्य उदाहरण

(१) "कनकन जोरे मन जुरै, खाते निबरै सोय।
बूँद बूँद सों घट भरै, टपकत रीतो होय॥" [वृन्द]

(२) रहिमन असुआ नयन ढरि, जिय दुख प्रकट करेय।
जाहि निकारौ गेह ते, कस न भेद कहि देय॥
[रहीम]

(३) सुख दुख के मधुर मिलन से, यह जीवन हो परिपूरन।
फिर घन में ओझल हो शशि, फिर शशि से ओझल हो घन॥
[पन्त]

(४) राम भाव अभिषेक समय जैसा रहा।
वन जाते भी सहज सौम्य वैसा रहा॥
वर्षा हो या ग्रीष्म सिन्धु रहता वही।
मर्यादा की सदा साक्षिणी है मही॥
[गुप्त : साकेत]

उदाहरण (Example)

जहाँ प्रकृत साधारण (सामान्य) बात कहकर जैसे, ज्यों, इव आदि वाचक शब्दों के द्वारा विशेष बात से उसका समर्थन किया जाता है वहाँ 'उदाहरण' होता है।

'उदाहरण' को कुछ आचार्यों ने तो 'उपमा' का ही अंग या भेद माना था। क्योंकि इसमें दो वाक्यों की समता 'इव' वाचक से दिखाई जाती है। वस्तुतः ज्यों जैसे, इव आदि ही उदाहरण के वाचक होते हैं। किन्तु पंडितराज जगन्नाथ के मत से इसमें सामान्य विशेष का सम-सम्बन्ध रहता है। अन्य अलंकारों से भेद आगे देखिये।

उदाहरण

(१) जगत जनायो जिहि सकल, सो हरि जान्यो नाहिं।
ज्यों आँखिनु सब देखिये, आँख न देखी जाहिं॥
[बिहारी]

(२) मधुर वचन ते जात मिटि, उत्तम जन अभिमान।
तनक शीत जल सों मिटै, जैसे दूध उफान॥ [वृन्द]

(३) नीकी पै फीकी लगै, बिनु अवसर की बात।
जैसे बरनत युद्ध में, रस-सिंगार न सुहात॥ [वृन्द कवि]

यह द्रष्टव्य है कि दृष्टान्त में एक की दूसरे से समता दिखाने की, रूपसादृश्य की दृष्टि नहीं होती (जो कि उपमा का विषय है) वरन् तर्क से बौद्धिक समर्थन की होनी चाहिए।

(अर्थान्तरन्यास और उदाहरण)

'अर्थान्तरन्यास' में प्रकृत सामान्य का विशेष से अथवा प्रकृत विशेष का सामान्य से समर्थन किया जाता है और वहाँ वाचक (इव, ज्यों, जैसे आदि) शब्दों का पूर्णतया अभाव होता है। उदाहरण में केवल सामान्य का ही विशेष से समर्थन होता है और वाचक शब्दों के द्वारा।

(दृष्टान्त' और 'उदाहरण')

'दृष्टान्त' अलङ्कार में दो (उपमेय–उपमान) वाक्यों में बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव होना आवश्यक है। दृष्टान्त में कवि का वर्ण्य उपमान वाक्य ही होता है परन्तु 'उदाहरण' में उपमेय वाक्य वर्ण्य होता है। उदाहरण में सामान्य की विशेष से समता दिखाई जाती है। अर्थात् उदाहरण में उत्तरार्द्ध पूर्वार्द्ध वाक्य का उदाहरण-मात्र रहता है।

दृष्टान्त और उदाहरण को भिन्न अलंकार मानना सर्वथा समीचीन है।

निदर्शना (Illustration)

जहाँ दो वाक्यों के अर्थ में भेद (भिन्नता) होते हुए भी, उनमें समता भाव सूचक ऐसा आरोप किया जाता है कि वे एक से प्रतीत होने लगते हैं, वहाँ 'निदर्शना' होती है।

जिसे जीत लेना जग में, लोहे के चने चबाना है।
उसी मरण पर विजय प्राप्त कर, हमें अमर हो जाना है॥

यहाँ पहले वाक्य (जीत लेना) से दूसरे वाक्य (लोहे के चने चबाना) के अर्थ में सामान्य सम्बन्ध नहीं है। फिर भी उसमें पारस्परिक समता का आरोप करके सम्बन्ध निरूपित किया गया है। इसमें 'उपमा' परिकल्पित रहती है।

(१) अर्थ निदर्शना

जहाँ दो वाक्यार्थों के असम्भव सम्बन्ध के लिये उपमा की कल्पना की जाय—

(१) भरिवो है समुद्र को संबुक में,
छिति को छिगुनी पर धारिवो है।
बाँधिबो है मृनाल सों मत्त करी,
जुही फूल सों सैल बिदारिबो है॥
गनिबो है सितारन को
कवि शंकर रेनु सों तेल निकारिबो है।
कविता समुझाइबो मूढ़न को,
कविता गहि भूमि पै डारिवो है॥

[शंकर]

(२) "कहाँ अल्प मेरी मति, कहाँ काव्य मत गूढ़।
सागर तरिवौ उडुप सों, चाहतु हौं मति-मूढ़ ॥"

अनुवाद [क० ला० पो०]

(२) स्वरूप निदर्शना

इसमें प्रस्तु (उपमेय) के गुण का सम्बन्ध अप्रस्तुत (उपमान) में अथवा इसका विलोम सूचित किया जाता है।

उदाहरण

(१) तव वचनन की मधुरता, रही सुधा महँ छाय।
चारु चमक चल नैन की, मीनन लई छिनाय ॥

(२) जेहि दिन दसन ज्योति निरभई,
बहुतै जोति जोति ओहि भई।
रविससि नखत दिपहिं ओहि जोती,
रतन पदारथ मानिक मोती ॥

[जायसी : पद्मावत]

(३) सुन्दरता तो स्वयं लगेगी, उसकी ज्योतित छाया-सी।
मधुता मंजुलता कोमलता भी, काया की माया-सी ॥

[सुधीन्द्र, जौहर]

(३) सदसदर्थ निदर्शना

[इसमें किसी वस्तु का अपनी क्रिया से सत् या असत् अर्थ या शिक्षा का सूचन कराया जाता है।]

(१) गुरु पादोदिक सिर धरिय—सदा जनावत ऐहु।
सिर धारत है गंग को महादेव करि नेहु ॥

(२) दीपक दीह प्रकास में जारत अंग पतंग।
दिखरावत सब नरन कों प्रेमचरित नवरंग॥

(३) सदैव देके विष बीज व्याज से,
स्वकीय मीठे फल के समूह को।
दिखा रहा था तरु वृन्द में खड़ा,
स्व-आततायीपन पेड़ आत का।

[हरिऔध : प्रियप्रवास]

'दृष्टान्त' और 'निदर्शना'

'दृष्टान्त' में दोनों वाक्य एक दूसरे से निरपेक्ष (स्वतंत्र) होते हैं; फिर भी उनके अर्थ में बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव होता है। वहां उपमान के वाक्यार्थ द्वारा उपमेय-वाक्य के अर्थ का निश्चय होता है।

'निदर्शना' में दोनों (उपमेय-उपमान वाक्य) सापेक्ष अर्थात् अन्योन्याश्रित रहते हैं—उपमेय-वाक्य में उपमान वाक्य के अर्थ का आरोप रहता है।

विशेष: 'निदर्शना' की माला भी हो सकती है, जैसे प्रथम भेद में यह उदाहरण—

(क)

कब कौन अगाध पयोनिधि के उस पार गया जल यान बिना,
मिल प्राण अपान उदान रहे न समान विमिश्रित व्यान बिना।
कहिये ध्रुव ध्येय मिला किसको अविकम्प अचंचल ध्यान बिना ?
कवि 'शंकर' मुक्ति मिली न कभी सुखमूल विवेकज ज्ञान बिना !

['शंकर']

अर्थान्तरन्यास

सामान्य (general) से प्रकृत विशेष (particular) का अथवा विशेष से प्रकृत सामान्य का जहाँ समर्थन किया जाता है वहां अर्थान्तरन्यास अलंकार होता है। अतः इसके दो प्रकार होते हैं।

(सामान्य से विशेष-समर्थन)

(रेखांकित पद 'विशेष' हैं)

(१) "निर्वासित थे राम राज्य था कानन में भी,

(प्रकृत विशेष)

सच ही है—श्रीमान भोगते सुख वन में भी।"

—जयशंकर 'प्रसाद'

(ख)

(२) राम भजन विनु मिटहिं न कामा, [प्रकृत विशेष]

थल विहीन तरु कबहुँ कि जामा ?

(विशेष से सामान्य का)

(१) "बड़े न हूजै गुनन बिनु बिरद बड़ाई पाय।

[प्रकृत सामान्य]

कहत धतूरे सों कनक गहनों गढ्यो न जाय।" [विशेष]

(२) जगत में घर की फूट बुरी, [प्रकृत सामान्य]

घर की फूटहि सों बिनसाई सुवरन लंकपुरी। [इत्यादि]

[भारतेन्दु : हरिश्चन्द्र]

(३) संकट में भी सज्जन स्वभाव अपना कभी नहीं तजता।
अर्ध ग्रसित सुधाकर सुखकर होता कुमुद वन को।
[रामचरित उपाध्याय]

यह समर्थन वैधर्म्य द्वारा भी हो सकता है।

उदाहरण

(विशेष से सामान्य का)

(१) जीवन में सुख दुःख निरन्तर आते जाते रहते हैं,
सुख तो सभी भोग लेते हैं दुःख धीर ही सहते हैं।
मनुज दुग्ध से दनुज रुधिर से, अमर सुधा से जीते हैं,
किन्तु हलाहल भव सागर का शिवशङ्कर ही पीते हैं।
[गुप्त 'साकेत']

(सामान्य से विशेष का)

(२) सुकुमार तुमको जानकर भी युद्ध में जाने दिया।
फल योग्य ही हे पुत्र, उसका शीघ्र हमने पा लिया।
परिणाम को सोचे बिना जो लोग करते काम हैं।
वे दुःख में पड़कर कभी पाते नहीं विश्राम हैं।
[गुप्त : जयद्रथवध]

अर्थान्तरन्यास और 'दृष्टान्त'

अर्थान्तरन्यास और 'दृष्टान्त' में यह अन्तर है कि—

(१) दृष्टान्त में सामान्य का सामान्य से अथवा विशेष का विशेष से ही समर्थन अतः वहां बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव रहता है।

(२) अर्थान्तन्यास में प्रकृत सामान्य का विशेष अथवा प्रकृत विशेष का सामान्य से समर्थन होता है। यहाँ समर्थ्य समर्थक भाव रहता है।

अर्थान्तरन्यास और उदाहरण

अर्थान्तरन्यास में जब, ज्यों या जैसे का योग किया जाता है; और उदारहण में सदैव सामान्य का विशेष से ही समर्थन होता है।

अप्रस्तुतप्रशंसा

जहाँ प्रस्तुत अर्थ की प्रतीति के लिए ही अप्रस्तुत का वर्णन किया जाता है, वहाँ 'अप्रस्तुत प्रशंसा' अलंकार होता है।

'प्रशंसा' का अर्थ यहां उल्लेख, वर्णन ही है।

अप्रस्तुत से प्रस्तुत का बोध कई सम्बन्धों के आधार पर होता है अतः इसके कई प्रकार होते है--

(१) सारूप्य निबन्धना--जहाँ सारुप्य (सादृश्य) के आधार पर अप्रस्तुत से प्रस्तुत का बोध हो।

(२) कारण निबन्धना—जहाँ 'कारण' (हेतु) के आधार पर अप्रस्तुत से प्रस्तुत का बोध हो।

(३) कार्य निबन्धना—जहाँ अप्रस्तुत कार्य से प्रस्तुत कारण का बोध हो।

(४) सामान्य निबन्धना—जहाँ सामान्य अप्रस्तुत से प्रस्तुत विशेष का बोध हो।

(५) विशेष निबन्धना—जहाँ विशेष अप्रस्तुत से सामान्य प्रस्तुत का बोध हो।

सारुप्यनिबन्धना : अन्योक्ति

[सादृश्य पर आधारित अप्रस्तुत प्रशंसा]

इसीको 'अन्योक्ति' भी कहा गया है।

उदाहरण

(१) नहि पराग नहिं मधुर मधु नहिं विकास इहि काल।
अली कली ही सो बिंध्यो आगे कौन हवाल ?

[यहाँ कली के रस में लुब्ध भ्रमर रसपान के सादृश्य से विलासी राजा के भोग विलास प्रस्तुत का बोध होता है।]

(२) भौंरा ये दिन कठिन हैं—सुख दुख सहै सरीर।
जब लग फूल न केतकी, तब लगि विलम करीर ॥

[यहाँ अप्रस्तुत भौंरे के वर्णन से प्रस्तुत दुखी जन का बोध किया गया है।]

सामान्य निबन्धना

[सामान्य अप्रस्तुत से प्रस्तुत विशेष का बोध]

उदाहरण

(१) बलवानों से बैर ठानकर जो जन रहते नहीं सचेत।
घर में आग लगा करके वे सोते हैं आनन्द समेत ॥

[यहाँ घर में आग लगाकर आनन्द से सोना—एक अप्रस्तुत सामान्य सिद्धान्त द्वारा 'बलवानों से बैर ठानना' प्रस्तुत विशेष का बोध कराया है।]

(२) सहि अपमान जु रहत चुप ता नर सों वर धूरि।
जो पादाहत झट उठत चढ़त हतक सिर पूरि ॥

['अपमान को सहन करने वाले तुझसे धूल भी अच्छी' यह विशेष कथन अभीष्ट था—इसके लिये सामान्य बात कही गई है ।]

विशेष-निबन्धना

[विशेष अप्रस्तुत से सामान्य प्रस्तुत का बोध]

उदाहरण

(१) बढ़ई वन में सीधे-सीधे वृत्तों ही को काटे है ।
किन्तु वहाँ टेढ़े-मेढ़े तरुओं को कोई न छाटे है ॥

[यहाँ अप्रस्तुत विशेष तथ्य को कहकर—'संसार में सब सीधों को कष्ट देते हैं'—'टेढ़ों से कोई बोलने का भी साहस नहीं करते'—इस सामान्य तथ्य का बोध कराया है ।]

(२) दास परस्पर प्रेम लखौ गुन छीर को नीर मिले सरसातु है ।
नीर बेंचावत आपने मोल जहाँ-जहाँ जाय के छीर विकातु है ।
पावक जारन छीर लगे तब नीर जरावत आपनो गातु है ।
नीर की पीर निबारन कारण छीर घरी ही घरी उफनातु है ।

[अप्रस्तुत चीर-नीर के विशेष वर्णन द्वारा 'प्रीति नीर-चीर जैसी हो' इस सामान्य का बोध होता है ।]

कार्य-निबन्धना

[अप्रस्तुत कार्य के प्रस्तुत कारण का बोध]

उदाहरण

(१) "राधे को बनाय विधि धोये हाथ, ताको रंग,
जमि भयो चन्द हाथ झारे भये तारे हैं ।"

["राधा की रचना करके विधाता ने हाथ धोये जिसका रंग जम कर चन्द्रमा बना और छींटा से तारे" इस अप्रस्तुत कार्य द्वारा 'राधा की सुन्दर रचना' कारण का बोध हुआ।]

(२) मै लै दयो लयो सु कर छुवत छिनकि गो नीर।
लाल तिहारो अरगजा उर ह्वै लग्यो अबीर॥

[बिहारी]

(३) है चन्द्र हृदय में बैठा उस शीतल किरण सहारे।
सौंदर्य सुधा बलिहारी चुगता चकोर अँगारे॥

कारण-निबन्धना

[अप्रस्तुत कारण से प्रस्तुत कार्य का बोध]

उदाहरण

(१) कुस, कंटक, मग कंकर नाना,
चलब पयादेहिं बिनु पदत्राना। [तुलसी रामायण]

[यहाँ कुश, कंटक, कंकरयुत भूमि में बिना पदत्राण के पैदल चलने के अप्रस्तुत कारण द्वारा 'वन में न चलने' (प्रस्तुत कार्य) का बोध कराया गया है।]

(२) उसके घर के सभी भिखारी! यह सच है तो जाऊँ।
क्या माँग तुच्छ विषयों की भिक्षा उसे लजाऊँ—

[गुप्तजी]

यहाँ अप्रस्तुत कारण का वर्णन करके 'न जाना'—प्रस्तुत कार्य का बोध कराया है।

समासोक्ति

जहाँ प्रस्तुत के वर्णन द्वारा, अन्य प्रकृत अर्थ के अतिरिक्त

कवि इच्छित अप्रस्तुत आशय का भी आभास होता है वहां समासोक्ति अलंकार होता है।

उदाहरण

(१) सहज सुगन्ध मदन्ध अलि करत चहुँदिशि गान।
देखि उदित रवि कमलिनी लगी मुदित मुस्कान॥

[यहाँ प्रस्तुत 'कमलिनी' के वर्णन द्वारा अप्रस्तुत नायिका के व्यवहार का भी आभास होता है।]

(२) जग के दुखदैन्य शयन पर यह रुग्णा बाला,
रे कब से जाग रही वह आँसू की नीरव माला।
पीली पड़ निर्बल कोमल, देहलता कुम्हलाई।
विवसना लाज में लिपटी साँसों में शून्य समाई॥ [पंत]

[यहाँ लिंग की समता के कारण प्रस्तुत चाँदनी के वर्णन से अप्रस्तुत रुग्णावाला का आभास होता है।]

(३) सो दिल्ली अस निबहुर देसू, केहि पूँछउ को कहे संदेसू।
जो कोइ जाइ तहाँ कर होई, जो आवै किछु जानन सोई।
अगम पंथ पिय तहाँ सिधावा, जो, रे, गयऊ सो बहुरि न आवा।
[जायसी पद्मावत]

[यहाँ रत्नसेन का दिल्ली कैद होना और वहाँ से न लौटना ही प्रस्तुत वर्णन है परन्तु इसमें परलोक-यात्रा-गमन और फिर वहाँ से न लौटने का अप्रस्तुत अर्थ भी भासित होता है।]

समासोक्ति और अप्रस्तुत प्रशंसा—

समासोक्ति में प्रस्तुत के वर्णन द्वारा वाच्यार्थ के अतिरिक्त अप्रस्तुत व्यंग्यार्थ का भी बोध होता है। परन्तु

अप्रस्तुत प्रशंसा में—अप्रस्तुत के वर्णन द्वारा प्रस्तुत का बोध कराया जाता है।

परिकर

जहाँ साभिप्राय विशेषण का कथन हो (अर्थात् विशेषण का ऐसा प्रयोग हो जो क्रिया के अनुरूप हो) वहाँ परिकर अलंकार होता है।

विशेषण का आशय गुणसूचक, धर्मसूचक शब्दों से है।

उदाहरण

(१) "अच्युत चरण-तरंगिणी शिव सिर मालति-माल।
हरि न बनइयो सुरसरी कीजौ इन्द्र व भाल॥"

[रहीम]

[यहाँ गंगा के दोनों विशेषण (१) अच्युत चरण तरंगिणी और (२) शिव सिर मालतिमाला साभिप्राय है।]

(२) "कलाधार द्विज राज तुम हरत सदा सन्ताप।
मो अबला के गात क्यों जारत हो अब आप।"

(३) मन मोहन सौं मोहु करि तू घनस्याम निहारि।
कुञ्जबिहारी सौं बिहरि, गिरधारी उर धारि॥

[बिहारी]

(४) अस्थिचर्ममय देह यह ता महँ ऐसी प्रीति।
तैसी जो श्रीराम महँ होति न तो भवभीत॥

[अस्थिचर्ममय विशेषण साभिप्राय है।]

(ख)

(५) "स्वसुत रक्षण और पर पुत्र के,
दलन की यह निर्मम प्रार्थना।

बहुत संभव है यदि यों कहे,
सुन नहीं सकती जगदम्बिका ॥"
[हरिऔध : प्रियप्रवास]

(६) "भाल में जाके सुधाधर है वही साहिब ताप हमारो हरैगो।
अंग है जाको विभूति भरौ वहै भौन में संपति भूरि भरैगो।
घातक है जु मनोभव को जग पातक वाही के जारे जरैगो।
'दास' जू सीस पै गंग लिये रहै ताकी कृपा कहु को न तरैगो।"
['दास']

(७) "किन्तु बिरह-वृश्चिक ने आकर अब यह मुझको घेरा।
गुणी गारुड़िक दूर खड़ा तू कौतुक देख न मेरा ॥"
[गुप्त : द्वापर]

परिकरांकुर

जहाँ साभिप्राय विशेष्य का कथन हो (अर्थात् विशेष्य का ऐसा प्रयोग हो जो परिस्थिति के अनुरूप हो।) वहाँ 'परिकराङ्कुर' अलंकार होता है।

उदाहरण

(१) बामा भामा कामिनी कहि बोलो प्रानेश।
प्यारी कहत लजात नहिं पावस चलत विदेश ॥ [बिहारी]

[बामा, भामा, प्यारी शब्दों का अभिप्राय यह है कि वर्षा में विदेश जाते समय प्यारी. इत्यादि क्यों कहते हो। वामा (कुटिला), भामा (कोप करने वाली), कामिनी (कामातुरा) कहना चाहिए था।]

(२) रसमयी लखवस्तु अनेक की,
सरसता अति भूतल व्यापिनी।
समझ था पड़ता। बरसात में,
उदक का रस नाम यथार्थ है।
[हरिऔध]

विशेषणविपर्यय : धर्मविपर्यय

यह एक अंग्रेज अलंकार है, जो हिन्दी में प्रयुक्त होने लगा है।

जहाँ साहचर्य से एक पदार्थ या व्यक्ति का गुण (विशेषण) या धर्म दूसरे पदार्थ के साथ लाया जाता है वहाँ विशेषण-विपर्यय या धर्म विपर्यय होता है।

उदाहरण

(१) कल्पना में है कसकती वेदना,
अश्रु में जीता सिसकता गान है।
[आँसू : प्रसाद]

[वेदना नहीं कसकती, पर वेदना से कसक होती है, गान नहीं सिसकता पर सिसकता हुआ हृदय गान गाता है।]

(२) चल चरणों का व्याकुल पनघट। [निराला]

(३) वेदना ही के सुरीले हाथ से है बना यह विश्व।
['ग्रंथि'—पंत]

[वेदना का स्वर सुरीला है—हाथ नहीं]

(४) सुखद सत्य में अब विलीन हों, तन मन के विह्वल सपने।
[सुधीन्द्र]

[विह्वलता व्यक्ति की है जो 'सपने' के साथ जोड़ दी गई है।]

लोकन्यायमूलक

मीलित

जहाँ दो समान गुणवाली वस्तुएँ परस्पर सम्पर्क से मिलकर अभिन्न होती हुई दिखाई जाती है वहाँ 'मीलित' अलंकार होता है।

उदाहरण

(क)

(१) पान पीक अधरान में सखी लखी नहिं जाय।
कजरारी अखियान में कजरारी न लखाय ॥ [बिहारी]

(२) वे आभा बन खो जाते, शशि-किरणों की उलझन में।
जिससे उनको कणकण में, ढूँढ़ूँ पहिचान न पाऊँ॥
[महादेवी]

(३) सर के कपोल के उजेले में दिवस, रात,
केशों के अँधेरे में निकल भागी पास से।
[रामनरेश त्रिपाठी]

(४) "रात बनी मूर्तिमती शुक्लाभिसारिका,
आ रही है निज को छिपाये सित वस्त्र में।" [आर्यावर्त]

'मीलित' में यदि गुण को व्यापकर्ता दी जाये तो यह उदाहरण होगा—

मेरे तन-मन प्राणों में एक हुए जब से,
मैं तुमको खोज रहा पर दूर नहीं पाता।
[सुधीन्द्र]

उन्मीलित

जहाँ (दो वस्तुओं के) 'मीलित' के अभेद का किसी हेतु (कारण) से उद्घाटन हो जाता है, वहाँ 'उन्मीलित' अलंकार होता है। यह मीलित के विपरीत होता है।

उदाहरण

(१) "डीठि न परत समानदुति कनक-कनक से गात।
भूषन कर करकस लगत परसि पिछाने जात।"

[समानद्युति होने से स्वर्ण के आभूषण स्वर्ण वर्ण में मिल गये हैं। ये दिखाई तो नहीं देते किन्तु स्पर्श से ही पहचान में आते हैं।]

(२) "(चम्पक हरवा अंग मिलि अधिक सोहाय)
जानि परै सिय हियरे जब कुंभिलाय।"

[तुलसी : बरवै रामायण)

चम्पक का हार (यद्यपि सीता के चम्पक वर्ण में मिल गया था) कुम्हलाने पर ही पृथक् प्रतीत हुआ।

'उन्मीलित' में यदि गुण को व्यापकता दे दी जाये तो यह उदाहरण होगा—

मेरे तन मन प्राणों में एक हुए जब से,
मैं तुमको खोज रहा पर खोज नहीं पाता!
मेरी साँसों में साँस तुम्हारी सुनता हूँ,
धड़कन में मेरा हृदय तुम्हारा स्वर गाता !!

—सुधीन्द्र

'उन्मीलित' अलंकार के साथ साथ मीलित का संकेत प्रायः आता है परन्तु अन्त में 'उन्मीलित' की ही झलक रह जाती है।

वैषम्य या विरोध-मूलक अलंकार

विरोध : विरोधाभास : विभावना : विशेषोक्ति : संगति

'विरोध' (Antithesis)

जब दो विरोधी पदार्थों का संयोग एक साथ दिखाया जाता है अथवा जाति, द्रव्य, गुण और क्रिया के द्वारा उनके संयोग से परस्पर विरोधी काम होता है, तब विरोध अलंकार होता है।

यद्यपि विरोध को आचार्यों ने 'विरोधाभास' में ही मिलाया है, परन्तु कभी-कभी चामत्कारिक न होकर भी 'विरोध' स्वयं आलंकारिक हो सकता है। जैसे—

जाकी कृपा पंगु गिरि लंघै,
अंधे को सब किछु दरसाई।
बहिरो सुनैं मूक पुनि बोलै,
रंक चलै सिर छत्र धराई।

अन्य उदाहरण

(१) नित्य का यह अनित्य दर्शन,
विवर्तन जग, जग व्यावर्तन,
अचिर से चिर का अन्वेषण,
विश्व का तत्व पूर्ण दर्शन। [पन्त : पल्लव]

(२) अश्रुओं में रहता है हास,
हास में अश्रु कणों का भास,
श्वास में छिपा हुआ उच्छ्वास।
और उच्छ्वासों ही में श्वास! [पन्त]

(३) पर्वत से लघु धूलि, धूलि से,
पर्वत बन पल में साकार—
काल चक्र से चढ़ते गिरते,
पल में जलधर फिर जलधार ! [पन्त]

(४) कटुता में मिठास पाती हूँ,
दिव्य अमृत में गरल मिला है ।
[गोपालशरणसिंह मानसी]

'विरोधाभास'

जहाँ वास्तविक विरोध न होते हुए भी, श्लेष आदि के चमत्कार से विरोध की (मिथ्या) प्रतीति कराई जाती है, वहाँ विरोधाभास अलंकार होता है ।

विरोध चार तत्त्वों पर अवलम्बित होता है—

(१) द्रव्य या व्यक्ति
(२) जाति
(३) गुण
(४) क्रिया

प्रस्तार में द्वारा इसके निम्नलिखित प्रकार हो सकते हैं ।

(१) द्रव्य (व्यक्ति)—द्रव्य (व्यक्ति) विरोध (२) द्रव्य (व्यक्ति) जाति विरोध (३) द्रव्य (व्यक्ति) गुण विरोध (४) द्रव्य (व्यक्ति) क्रिया विरोध (५) जाति-जाति विरोध (६) जाति-गुण [illegible] विरोध (७) जाति-क्रिया विरोध (८) गुण-गुण विरोध (९) गुण क्रिया विरोध (१०) क्रिया-क्रिया विरोध ।

उदाहरण

(द्रव्य-द्रव्य या व्यक्ति-व्यक्ति विरोध)

(१) चन्दन हालाहल भयो, चन्द भयो है सूर।
फूल गुलाब त्रिसूल सो, वाडव भयो कपूर।

[चन्दन का हालाहल (विष) द्रव्य से विरोध है परन्तु वियोगावस्था के कारण उक्त विरोध का परिहार होता है। इत्यादि]

(२) हमारे काम न अपने काम नहीं हम जो हम ज्ञात।
अरे निज छाया में उपनाम छिपे है हम अपरूप।

[पन्त]

(व्यक्ति-जाति विरोध)

सीता नयन चकोर सखि रविबंशी रघुनाथ।
रामचन्द्र सिय कमल-मुख भलो बन्यो है साथ।

[रवि का चकोर से, चंद्र का कमल से विरोध]

(द्रव्य-गुण विरोध)

विषमय यह गोदावरी अमृतनि के फल देति।
केशव जीवन हार को दुख असेष हरि लेति!

[यहाँ विषमय गुण का अमृत द्रव्य से विरोध है किन्तु विष का अर्थ जल और अमृत का देवता होने से विरोध का परिहार हो गया है।

(द्रव्य-क्रिया विरोध)

(१) अब न प्राण राखत बनत बेगि पधारहु पीय।
चन्द जरावत आगि लौं काटत कमलहु हीय।

[चन्द्र का जलाना क्रिया से विरोध]

(२) आग हूँ जिससे ढुलकते बिन्दु हिमजल के।
शून्य हूँ जिसमें बिछे हैं पांवडे पल के।

[महादेवी]

(जाति-जाति विरोध)

(१) सुधा धाम ह्वै करत है तू विष ही को काज।
अहै कसाई के सरिस तू ह्वै के द्विजराज।

[द्विजराज (ब्राह्मण) से कसाई जाति का विरोध, चन्द्रमा अर्थ होने से विरोध का परिहार]

(जाति-गुण विरोध)

(१) चंदन, उसीर, चोबा दाहक वियोगिनी को हुए।
(२) कहत कृपा मय सब सदा लीन्हे रहत कटार।
तू असील साहब तऊ सोहत सील भँडार।

[कृपामय गुण का कटार जाति से विरोध, राजा का गुण करुणा और वीरत्व दोनों हैं]

(जाति-क्रिया विरोध)

श्री सरजा सिव तो जस सेत सों होत हैं बैरिन के मुँह कारे,
भूषन तेरे अरुन्न प्रताप सपेत लखे कुनबा नृप सारें।
साहि तनै तब कोप कृसानु तें बैरि गरे सब पानिप वारे।
एक अचंभव होत बड़ो तिन ओठ गहे अरि जात न जारे।

(गुण-गुण विरोध)

(१) तेरे ये कटु वचन मुझे अतिशय ही मीठे लगते हैं।
(२) या अनुरागी चित्त की गति समुझै नहिं कोय।
ज्यों-ज्यों बूड़ै स्यामरंग, त्यौं-त्यों उज्ज्वल होय ॥

[यहाँ श्यामरंग 'गुण' का उज्ज्वल रंग (गुण) का होना विरोध है]

(गुण क्रिया विरोध)

(१) मृदुल मधुर हू खल वचन दाहक होत विशेष,
यद्यपि कठिन तऊ सुख करन सज्जन वचन हमेश,

[यहाँ 'मृदुल' गुण का 'दाह' क्रिया के साथ और 'कठिन' गुण का 'सुख करन' क्रिया के साथ विरोधाभास है]

(क्रिया-क्रिया विरोध)

(१) बैन सुन्यो जब तें मधुर, तब तें सुनत न बैन।
नैन लगे जब तें, सखी तब तें लगत न नैन।

['सुनना' क्रिया का 'न सुनना क्रिया से' और 'लगना' का 'न लगना' से विरोध है। 'न सुनत' का अर्थ दूसरे की बातों पर ध्यान न देना और 'लगत न' का आंख न लगना। (नींद न आना) अर्थ होने से विरोध का परिहार होता है।]

(२) मैं तैर सकूँगा अब यह जीवन का सागर,
यों डुब चुका है क्योंकि तुम्हारा प्यार मुझे।

[तैरना और डूबना क्रियाओं का विरोध है।]

विभावना [कार्य होता है]

जहाँ हेतु या कारण बिना ही कार्य्य की विलक्षण भावना (कल्पना) की जाती है वहा विभावना होती है।

यह कारणाभाव कई प्रकार का होता है—

(१) कारण न होने पर भी कार्य-साधन [कारणाभाव]
(२) अपूर्ण (अपर्याप्त) कारण से भी कार्य साधन [अपूर्णकारण]

(३) कार्य बाधा में भी कार्य-साधन [प्रतिबंधककारण]
(४) भिन्न कारण से भी कार्य-साधन [भिन्नकारण]
(५) विरुद्ध कारण से भी कार्य-साधन [विलोमकारण]
(६) कार्य से कारण-साधन [कारण-विपर्यय]

(१) कारणाभावमूला

[कारण के अभाव में कार्य]

(१) रहित सदाई हरियाई हिय घायनि में
ऊरध उसांस सो झकोर पुरबा की है।
पीव-पीव गोपी पीर पूरित पुकारति हैं
सोई रत्नाकर पुकार पपिहा की है।
लागी रहै नैननि सों नीर की झरी औ उठै
चित्त में चमक सो चमक चपला की है।
बिनु घनस्याम धाम-धाम ब्रज मण्डल में
ऊधो, नित बसति बहार बरसा की है।
[रत्नाकर : उद्धवशतक]

(२) बिनु पद चलै सुनै बिनु काना।
कर बिनु कर्म करै विधि नाना।
आनन रहित सकल रसभोगी।
बिनु बानी बक्ता बड़ जोगी। (तुलसी रा० च० मा०)

(३) केशव, कहि न जाइ का कहिये।
देखत तब रचना विचित्र अति समुझि मनहिं मन रहिये।
शून्यभीति पर चित्र रंग नहिं, तनु बिनु लिखा चितेरे।
(तुलसी : विनयपत्रिका)

(ख)

(४) बिना बजाये ही झंकृत हो—
उठे हृदय वीणा के तार। [सुधीन्द्र]

(२) अपूर्णकारणमूला

[अपूर्णकारण से ही कार्य-साधन]

(१) तिय कित कमनैती पढ़ी बिन जिह भौंह—कमान।
चल चित बेधत, चुकत नहिं, बंक बिलोकनि बान।

[बिहारी]

[यहाँ अपूर्ण या अपर्याप्त कारण हैं—
१—बिना प्रत्यञ्चा की कमान [भौंह]
२—बंकिम तीर [दृष्टि]
फिर भी चञ्चल चित्त का विद्ध हो जाना कार्य है]

(२) मन्त्र परम लघु जासु बस विधि हरि हर सुर सर्व।
महामत्त गजराज कहँ बसकर अंकुस खर्व।

[तुलसी रा० च० मा०]

[विधि, सुरों और गजराज को वश में करने जैसे कठिन कार्य के लिये मन्त्र और अँकुश जैसे लघु कारण का कथन है]

(३) गुरु गृह गये पढ़न रघुराई।
अल्प काल विद्या आई।

['अल्पकाल' में ही पूर्ण विद्या की प्राप्ति हो गई। अपूर्ण कारण के रहते हुए भी कार्य हो गया]

(३) प्रतिबन्धक-कारणमूला

[प्रतिबन्ध या बाधा होते हुए भी कार्य]

(क)

(१) "नैना नेकु न मानहीं कितो कहौं समुझायँ।
ये मुँह जोर तुरंग लौं, ऐंचत हू चलि जायँ।"

बिहारी]

(२) निस दिन श्रुति संगति तऊ नयन राग की खान।
[श्रुति = कान। राग = लालिमा, प्रेम]

(ख)

(३) ज्यों-ज्यों लज्जा विवश वह भी रोकती वारिधारा—
त्यों-त्यों आँसू अधिकतर थे लोचनो मध्य आते।
[प्रियप्रवास]

(४) क्षत-विक्षत होता था तन, पर मन पर हँसता था उल्लास।
शोक-निशा में भी करता था, जीवन नव आलोक-विकास।
[सुधीन्द्र : जौहर]

शेष तीन प्रकार प्राय: विरोधाभास से मिलते-जुलते हैं।

(४) भिन्नकारण मूला

[भिन्न कारण या अकारण से कार्य साधन]

(१) बेधत अनियारे दृगन, बेधन करत न खेद।
बरबस बेधत मो हियो, तो नासा को छेद॥ [बिहारी]

[नासिका छेद बेधक वस्तु नहीं हो सकता, परन्तु फिर भी उससे कार्य हो रहा है।]

(२) परयौ समुझि नहिं आजु लौं या अचरज को हेतु।
फरयौ असित असिलता तें, सुजस चारुफल सेतु॥
[वियोगी हरि : वीर सतसई]

कभी-कभी इसमें रूपकातिशयोक्ति का आश्रय लिया जाता है—

(३) निकसी नीरजनाल तें चम्पक कलिका पाँच!

[कमलनाल (जो भुजा का उपमान है) : हेतु (कारण)
चंपककलिका (ज अँगुली का उपमान है) : फल (कार्य)]

कभी-कभी उत्प्रेक्षा का भी—

(४) हँसत बाल के बदन में यो छवि कछू अतूल।
मानहुँ चम्पक बेलि तें झरत चमेली फूल॥ [मतिराम]

(ख)

(५) चुभते ही तेरा अरुन बान
बहते कन कन से फूट फूट
मधु के निर्झर से सजल गान। [महादेवी : रश्मि]

[बाण के आघात से गान की सृष्टि होना भिन्न कारण से कार्य है।]

(६) छू-छूकर मन में बेटे के बोलों की पल्लव-माला,
जाग उठी माँ के प्राणों में क्यों प्रतिशोधों की ज्वाला?
[सुधीन्द्र : जौहर]

(५) विलोम कारणमूला

[विपरीत या विरुद्ध कारण से कार्य]

उदाहरण

(क)

(१) जा दिन अखिल खलभलै खल खलक मैं,
जा दिन सियाजी गाजी नेक करखत हैं।
सुनत नगारन अगार तजि अरिन की,
दारगन भाजत न बार परखत है।
छूटे बार-बार छूटे बारन तें लाल देखि,
भूषन सुकवि बरनत हरषत हैं।
क्यों न उतपात होहिं वैरिन के झुण्डन में,
कारे घन उमड़ि अँगारे बरखत हैं।*
[भूषण]

* इसे विरोधाभास के भेद से मिलाइए।

(२) समरानल से जिसने उर की जलती ज्वाला ठंडी की।

[सुधीन्द्र : जौहर]

(३) दुख इस मानव आत्मा का रे नित का मधुमय भोजन।
दुख के तम को खा खाकर भरती प्रकाश से वह मन॥

[पन्त : गुञ्जन]

(४) खेल खिलाकर भी आर्यों को वे सब यहाँ रिझाते हैं।

[गुप्त : पंचवटी]

(६) कारणविपर्ययमूला

[जहाँ कार्य्यरूप कारण से कारण रूप कार्य हो]

(१) "कर कलपद्रुम सों कियो जस समुद्र उत्पन्न।"

[यहाँ कल्पवृक्ष से समुद्र की उत्पत्ति दिखाई है, जबकि समुद्र से कल्पवृक्ष उत्पन्न हुआ था।]

(२) "भयो सिन्धु तें विधु सुकवि बरनत बिना विचार।
उपज्यो तब मुख इन्दु तें प्रेम पयोधि अपार॥"

(३) "ललन चलन की बात सुनि दहक-दहक हिय जातु।
दृग सरोज ते निकसि अलि, सलिल प्रवाह बहातु॥"

(४) और नदी नदन ते कोकनद होत तेरो—
कर कोकनद नदी नद प्रकटत हैं।

(ख)

(५) "लोचन नीरज से यह देखो,
अश्रु नदी बढ़ आई है।"

(६) भर गई सुरा है कुछ ऐसी इन नयनों में,
जिससे मिट्टी की देह कनक का प्याला है।

[सुधीन्द्र]

[स्वर्ण के प्याले में सुरा भरी जा सकती है, किन्तु यहाँ सुरा से (जो नयनों में भरी हुई है) मिट्टी की देह भी कनक का प्याला बन गई है।]

विशेषोक्ति

जहाँ कारण-भाव होते हुए भी कार्य्याभाव वर्णित होता है, वहाँ विशेषोक्ति होती है।

'विभावना' में प्रायः कारणाभाव से कार्य्य-भाव होता है, 'विशेषोक्ति' इसका विलोम है, इसमें कारण-भाव से भी कार्य का अभाव ही रहता है।

[वि + शेष + उक्ति अर्थात् विहीन + कार्य्य + उक्ति]

उदाहरण

(१) मूरख हृदय न चेत, जो गुरु मिलहिं विरञ्चि सम।
(२) फूलै फलै न बेत, यदपि सुधा वर्षहिं जलद॥

[तुलसी]

(१) विरंचि के समान गुरु मिलना— प्रबलकारण
(२) बादलों का सुधा-वर्षण— प्रबल कारण

(३) लिखन बैठि जाकी सबिहि गहि गहि गरब गरूर।
भये न केते जगत के चतुर चितेरे कूर॥

[बिहारी]

(४) "नेह न नैनन को कछू उपजी बड़ी बलाय।
नीर भरे नित प्रति रहे तऊ न प्यास बुझाय।" [बिहारी]

(ख)

(१) "देखो दो दो मेघ बरसते मैं प्यासी की प्यासी।" (गुप्त)

(२) यह वह हाला है जिसको मन पी पीकर न अघाता है—
उतना ही प्यासा रहता है जितना पीता जाता है।
[सुधीन्द्र]

(३) "विमाता बन गई आँधी भयावह।
हुआ चंचल न तो भी श्यामघन वह॥" [साकेत]

विशेषोक्ति और विरोधाभास—

'विशेषोक्ति' में कारण के भाव में भी कार्य का अभाव रहता है परन्तु 'विरोधाभास' में कारण का कार्य से विरोध होता है।

असंगति

जहाँ कार्य और कारण की उचित संगति का अभाव वर्णित हो वहाँ 'असंगति' होती है। यह त्रिविधा है—

(१) देशगता—कारण कहीं, कार्य्य कहीं हो।

(२) कार्यस्थलगता—कार्य का स्थल असंगत हो।

(३) कार्यरूपगता—कार्यरूप की असंगति हो।

(१) देशगता

[कारण कहीं कार्य्य कहीं]

(१) दृग अरुझत टूटत कुटुम, जुरत चतुर चित प्रीति।
परति गाँठ दुर्जन हिये, दई नई यह रीति॥
[बिहारी]

(२) सूरति जराइ कियो दाह पातसाह उर,
स्याही जाय सब पातसाही मुख झलकी।
[भूषण : शिवाबावनी]

(३) जिन बींथिन विचरैं सब भाई।
थकित होहिं सब लोग लुगाई॥ [तुलसी]

(ख)

(४) कोयल काली है मतवाली, पर आम्रमंजरी रही झूम।
(५) मेरे जीवन की उलझन बिखरी थी उनकी अलकें।
पीली मधु मदिरा किसने थी बन्द हमारी पलकें॥
[प्रसाद]
(६) प्रेम में एक सोचता है, दूसरा कहता बात वही।
एक के दर्द हो रहा है—दूसरा उसको सहता है॥
[प्रतापनारायण पुरोहित (मन्दाकिनि)]

(२) कार्यस्थलगता

[कार्य्य कहाँ करना था कहाँ हुआ]

(१) नृप तुव अरि रमणीन के चरित विचित्र लखाहिं।
नयनन ढिंग कंकण धरैं, तिलक धरैं कर माहिं॥
[कंकण=कं + कण, जलकण; तिलक=तिल + क, तिलांजलि]
(२) "वंशी धुनि सुनि व्रज वधू चली विसार विचार।
भुज भूषन पहिरे पगनि भुजन लपेटे हार॥"
(३) मैं देख्यौ बनन्हात, रामचन्द्र तुव अरितियन्ह।
कटितट पहिरे पात, दृग कंकन, कर में तिलक॥

(३) कार्यरूपगता

[विरुद्ध या असंगत कार्य करना]

(१) जलद तू जग को जल दे रहा,
अनल क्यों मुझको ज्वलिता महा।
(२) लेने आया था मोल तुम्हें मैं प्राणों से—
पर प्राणों को दे स्वयं बिक गया हूँ तुम्हीं से।

विषम

जहाँ विरूप (अनुरूपता-रहित) तत्त्वों (पदार्थ या व्यक्ति) का सम्बन्ध सूचित किया जाता है। वहां विषम अलङ्कार होता है। इसमें विरोधी (वेमेल) तत्त्वों का वर्णन होता है। कई अंशों में यह सम का विलोम है।

(रूप वैषम्य-निदर्शक)

[कहाँ यह, कहाँ वह ? से वैषम्य-निदर्शन]

(१) "कहाँ मृदुल तन कामिनी सिरिस प्रसून समान,
कहा मदन की अनल यह अब सम दुसह महान्।"

(२) जोग कहाँ मुनि जोगन जोग कहाँ अवला मति है चपला सी,
स्याम कहाँ अभिराम सरूप कुरूप कहाँ वह कूबरी दासी।"

(ख)

(३) पल पल श्री शोभा करती थी लीला से शृंगार जहाँ,
दग्ध कथा अपनी कहते थे अब विखरे अंगार वहाँ।

[सुधीन्द्र, जौहर]

(४) आज गर्वोन्नत हर्म्य अपार : रत्नदीपावलि मन्त्रोच्चार।
उलूकों के कल भग्न विहार। झिल्लियों की झनकार।

[पन्त : पल्लव]

(५) काले कुत्सित कीट का कुसुम में कोई नहीं काम था।
कांटे से कमनीयता कमल में क्या है न कोई कमी ?
दंडों में कब ईख के विपुलता है ग्रन्थियों की भली।
हा दुर्दैव प्रगल्भते, अपटता तू ने कहां की नहीं ?

[हरिऔध]

[फल वैषम्य-निदर्शक]

(क)

(१) "दिगपालन की भुवपालन की लोक पालन की किन मागई च्वै।
कत भांड भये उठि आसन तें कहि केसब संभु सरासन को छ्वै।
अरु काहु चढ़ायो न काहू नवायो न, काहू उठायौ न आंगु हू द्वै।
कछु स्वारथ भो न भयो परमारथ, आये ह्वै वीर चले वनिता ह्वै।

[केशव]

(२) "जीतिवे को आये भृगनन्द रघुन्दन को,
हार गये आपु भये रीते वीरताई सों।"

(ख)

(१) मुझे होलिका चली जलाने स्वयं भस्म हो गई अभागिन,
स्वयं काल का ग्रास बन गई मुझको खाने वाली नागिन।"

[हरिकृष्ण : 'प्रेमी']

विचित्र

जहाँ 'फल' के विपरीत 'प्रयत्न' वर्णित होने की विचित्रता हो वहां 'विचित्र' अलङ्कार होता है।

उदाहरण

(१) "अमर बनै इस लोभ से रण में मरते वीर।
भवसागर के पार को बूडे गंगा—नीर।"

[रामदहिन : मिश्र]

(२) समरानल से जिसने उर की जलती ज्वाला ठंडी की।

[सुधीन्द्र : जौहर]

व्याघात

जहाँ किसी वस्तु के भिन्न वस्तु या व्यक्ति के प्रति विपरीति व्यवहार वर्णित होता है। वहाँ 'व्याघात' अलङ्कार होता है।

उदाहरण

(१) दीनन को कहि वचन ही दुर्जन जग दुख देत।
तिन ही सों हरषित करहिं सज्जन कृपानिकेत।

[वचनों से दुष्ट लोग दीनों को दुखी करते हैं और वचनों से ही सज्जन लोग सबको प्रसन्न रखते हैं]

(२) जासों काटत जगत के बंधन दीनदयाल,
ता चितवनसों तियन के मन बाँधत गोपाल।

[जिस दृष्टि से कृष्ण जगत के बन्धन काटते हैं उसी से स्त्रियों के मन बाँधते हैं—एक ही वस्तु से दो विपरीत कार्य हो रहे हैं]

(३) लोभी धन संचय करैं दारिद को डर मानि।
'दास यहै डर मानिके दान देत है दानि॥

[एक ही कारण—'दारिद के डर मान' से दो विपरीत कार्य हो रहे है। लोभी धन संचय करते हैं और दानी-दान देते हैं]

तर्क न्याय मूलक

काव्यलिंग (Poetic Reason)

जहाँ समर्थनीय कथितार्थ का किसी कारण द्वारा समर्थन किया जाता है वहां काव्यलिंग अलंकार होता है।

लिंग 'का अर्थ है चिन्ह'। और यहां इसका अर्थ है हेतु-विशेष।

(१) स्याम गौर किमि कहौं बखानी,
गिरा अनयन नयन बिनु बानी।
—तुलसी : रा० च० मा०

(३) कनक-कनक तें सों गुनी मादकता अधिकाय।
यह खाये बौरात है यह पाये बौराय।
[बिहारी]

(३) एक छत्र इक मुकुट मनि सब बरनन पर जोउ।
तुलसी रघुवर नाम के बरन बिराजत दोउ।
—तुलसी

[राम का 'र' (ि) बनकर छत्र हो जाता है, म का म् (ॱ) मुकुट मणि की भांति लगता है]

(२) क्षमा करो इस भांति न तुम तज दो मुझे।
स्वर्ण नहीं हे राम चरणरज दो मुझे।
जड़ भी चेतन मूर्ति हुई पाकर जिसे।
मुझे छोड़ पाषाण भला भावे किसे?
—गुप्त (साकेत)

(३) बेदना ही में तप कर प्राण,
दमक दिखलाते स्वर्ण हुलास।
[पन्त : पल्लव]

सूचना

इस अलंकार को पूर्व आचार्यों ने हेतु 'या काव्य हेतु' भी कहा है, वह उचित ही था।

अनुमान (Inference)

जहाँ साधन द्वारा साध्य का चमत्कार-पूर्वक ज्ञान कराया जाता है वहाँ अनुमान अलंकार होता है।

(१) नाचि अचानक ही उठे बिन पावस बन मोर।
जानत हौं नंदित करी यह दिशि नन्दकिशोर॥

[यहाँ मयूरों का नृत्य साधन हैं—और नंद किशोर का आगमन साध्य]

(२) प्रिय मुख ससि निहचै बसतु मृगनैनी हिय सद्म।
किरन प्रभा तन पीतता मुकुलित हैं दृग पद्म॥

[विरहिणी नायिका के शरीर का पीलापन और मुकुलित नेत्र साधन हैं—इसके द्वारा उसके हृदय में उसके पति के मुख चन्द्र का निवास सिद्ध किया गया है।]

काव्यार्थापत्ति

जहाँ दण्डपूपिका न्याय से कोई आशय (कार्य अथवा प्रयोजन) सिद्ध कराया जाना कहा जाता है, वहाँ काव्यार्थापत्ति अलंकार होता है।

अर्थापत्ति का अर्थ है 'अर्थ का आ पड़ना'

[दण्ड पूपिका न्याय :—चूहा दण्ड (डण्ड) को खा गया यह कहने से दण्ड से चिपके हुए माल पुए (पूपिका) का खाया जाना भी सिद्ध होता है—अतः जहाँ कोई कठिन कार्य करने में सरल कार्य अपने आप हो जाना कथित होता है, वहाँ 'दण्डपूपिका न्याय' होता है।

उदाहरण

कंक के कहे सौं जदुबंस को बताइ उन्हें,
तैसे ही प्रससि कुबजा पै ललचायो जौ।
कहै रतनाकर मुष्टिक चनूर आदि,
मल्लनि को ध्यान आति हिय कसकायौ जौ।
नन्द जसुदा की सुखमूरि करि धूरि सबै,
गोपी ग्वाल गैयनि पै गाज लै गिरायो जौ।
होते कहूँ क्रूर तौ न जानैं करते धौं कहाँ,
ऐते क्रूर करम अक्रूर है कमायौ जौ।

—रत्नाकर

(ख)

(१) प्रभु ने भाई को पकड़ हृदय पर खींचा।
रोदन-जल से सविनोद उन्हें फिर सींचा।
उसके आशय की थाह मिलेगी किसको ?
जनकर जननी भी जान न पाई जिसको।

[गुप्त : साकेत]

(२) देखो यह कपोत--कण्ठ,
बाहु बल्ली कर सरोज।
उन्नत उरोज पीन क्षीण-कटि,
नितम्ब भार-चरण सुकुमार-मिति मन्द मन्द।
छूट जाता ऋषि मुनियों का,
देवों भोगियों की तो बात ही निराली है।

—निराला,

मिथ्याध्यवसिति

जहाँ किसी मिथ्या (असत्य) को अनेक मिथ्या कल्पनाओं के द्वारा ही मिथ्या सिद्ध किया जाता है वहाँ मिथ्याध्वसिति अलंकार होता है।

यह बड़ा रोचक अलंकार है।

उदाहरण

(१) "सस सींगन के धनु लिये गगन कुसुम ले हाथ।
खेलत वंध्या सुतन सँग तेरे अरि भुविनाथ।"

—क० ला० पो०

(२) मधुर वारिधि हो, कटु हो सुधा,
अति निवारण हो विष से क्षुधा।
रवि सुशीतल दाहक हो शशी,
पर कभी अपनी न मृगी दृशीं।

[रा० च० उपाध्याय]

लोक न्याय मूलक

तद्गुण

जहाँ एक वस्तु अपना गुण छोड़कर दूसरे पदार्थ के साहचर्य से उसका गुण ग्रहण करती है वहां 'तद्गुण' होता है।

आचार्यों ने प्रायः गुण को 'रंग' में ही सीमित कर दिया है।

उदाहरण

(क)

(१) सिय, तुव अंग रंग मिलि अधिक उदोत।
हार बेलि पहिरावो चम्पक होत।

[तुलसी : बरवै रामायण]

[बेले की माला सीता के शरीर के स्वर्ण वर्ण के साहचर्य से चम्पक बन जाती है]

(२) अधर धरत हरि के परत ओठ डीटि पटज्योति।
हरित वांस की बांसुरी इंद्र धनुष रंग होति॥

[बिहारी : सतसई]

(ख)

(४) नाक का मोती अधर की कान्ति से।
बीज दाड़िम का समझकर (भ्रान्ति से)

[गुप्त : साकेत]

तद्गुण का सौन्दर्य 'भ्रम' के साथ अच्छा खिलता है, अन्तस प्रायः तद्गुण के उपरान्त भ्रम (भ्रान्तिमान) की उद्भावना भी की जाती है।

यदि गुण (धर्म) को हम प्रसार दें तो इस अलंकार में एक नई आभा आ सकती है।

तजि तीरथ, हरि राधिका तन दुति कर अनुराग।
जेहि ब्रज केलि निकुंज मन पग पग हो प्रयाग।

[बिहारी]

अतद्गुण

जहाँ संसर्ग या साहचर्य से पदार्थ का गुण (रंग) न ग्रहण करना वर्णित हो वहाँ अतद्गुण अलंकार होता है।

यह 'तद्गुण' का विलोम (उलटा) है। इसमें पदार्थ अपना रंग दूसरे प्रभाव के साहचर्य से भी नहीं छोड़ता।

उदाहरण

(क)

(१) सिव सरजा की जगत में राजति कीरति नौल।
अरि-तिय दृग-अंजन हरै तऊ धौल की धौल ॥ [भूषण]

[यद्यपि शिवाजी शत्रु की स्त्रियों को रुलाकर उनकी आँख का काजल छीन लेते हैं, परन्तु उनकी अमल धवल कीर्ति फिर भी धवल ही रहती है।]

(२) एरी यह तेरी दई क्यों हूं प्रकृति न जाइ।
नेह भरे हिय राखिये तू रुखिये लखाइ ॥ [बिहारी]

(ख)

(१) आप अपना हृदय उज्ज्वल कह रहे,
रंग उस पर प्रिय नहीं चढ़ता कहीं।
राग-पूरित हृदय में रहती उसे,
रक्त फिर भी वह कभी होता नहीं।

(२) कालिन्दी के असित और सित गंगा के जल में स्थित तू।
स्नान नित्य करता रहता है तरणकेलि में रत हो ॥
किन्तु नहीं घटती बढ़ती वह तेरी विमल शुभ्रता है।
राजहंस, तेरे में क्या ही अकथनीय अनुपमता है ॥
[कन्हैयालाल पोद्दार]

अतद्गुण और पूर्वरूप

आगे 'पूवरूप' में एक बार तद्गुण होकर फिर पूर्वरूप में आना दिखाया जाता है परन्तु अतद्गुण में उसका तद्गुण होना न दिखाकर उसका गुण (रंग) न बदलना दिखाया जाता है।

पूर्वरूप

जहाँ एक वस्तु साहचर्य से अपना गुण छोड़कर, दूसरे का गुण ग्रहण करके पुनः पूर्व-रूप प्राप्त करती दिखाई जाती है, वहाँ पूर्वरूप अलंकार होता है।

उदाहरण

(१) केस मुकुत सखि मरकत मनिमय होत।
हाथ लेत पुनि मुकता करत उदोत॥

[तुलसी, बरवै रामायण]

'मुक्ता' केश के संसर्ग से मरकत (नीलवर्ण) मणि होकर हाथ में आने से पुनः मुक्ता हो जाती है।

(२) वदन चंद की चाँदनी देह दीप की ज्योति।
रात बिते हूलाल वहि भौन राति सी होति॥

(३) सेत कमल कर लेत ही अरुन कमल छवि देत।
नील कमल निरखत भयौ सित सेत को सेंत॥

(ख)

(१) राधा मिली श्याम से जिस पल श्याम हुई।
उनसे बिछुड़ी पुनः स्वर्ण-अभिराम हुई॥

पूर्वरूप और अतद्गुण

अतद्गुण में किसी वस्तु का संसर्ग से गुण न बदलना दिखाया जाता है, किन्तु पूर्वरूप में उसका गुण बदलकर पुनः उसी रूप में आजाना दिखाया जाता है।

अनुगुण

संसर्ग (साहचर्य अथवा सामीप्य) से गुण का प्रकर्ष अनुगुण अलङ्कार होता है।

उदाहरण

(क)

(१) "काने खोरे कूबरे कुटिल कुचाली जानि।
तिय विशेष पुनि चेरि कह भरत मातु मुसुकानि ॥"

(२) मुकुत माल हिय हास ते सेत अधिक ह्वै जाय।
अधर राग हिय राग ते अरुणाई अधिकाय ॥"

(ख)

(३) है अधर मधु—ओठका पर स्पर्श कर देता मधुरता।
प्रेय हो तुम किन्तु प्रियतर बन गये मेरे हृदय पट ॥

(सुधीन्द्र)

सूचना

चन्द्रालोक (जयदेव) तथा कुवलयानन्द (अप्पय) में इसे तद्गुण से पृथक् अलङ्कार माना गया है। उद्योतकार इसे तद्गुण के अन्तर्गत मानते हैं। परन्तु यह पृथक् ही है।

प्रत्यनीक *

जहाँ एक वस्तु (व्यक्ति या पदार्थ) से बैर या मित्रता के कारण उसके पक्ष की वस्तु से बदला (प्रतिकार) लेना दिखाया जाता है, वहाँ प्रत्यनीक होता है। यह प्रतिकार अशुभ भी होता है, शुभ भी।

इसका सम्बन्ध प्रायः हेतूत्प्रेक्षा (या फलोत्प्रेक्षा) से रहता है। फिर भी इसको पृथक् अलंकार माना जाता रहा है।

उदाहरण

(१)

(१) "तो मुख छविसों हारि जग भयो कलंक समेत।
सरद इन्दु अरविन्द मुखि, अरविन्दनि दुख देत॥"

(२) "वरन स्याम, तम नाम तम, उभय राहु सम जान।
तिमिरहिं ससि सूरज ग्रसत निसिदिन निश्चय मान॥"

(३) सोवत सीतानाथ के भृगु मुनि दीन्ही लात।
भृगुकुल पति की गति हरी मनो सुमिरि बहू बात॥

(यह उदाहरण हेतूत्प्रेक्षा का भी हो सकता है)

(२)

(१) पादांकपूत अयि धूलि प्रशंसनीया,
मैं बाँधती समुद अंचल में तुझे हूं।
होगी मुझे सतत् तू बहु शान्तिदाता,
देगी प्रकाश तम में घिरते दृगों के।

(हरिऔध प्रियप्रवास)

* इस अलंकार को हेतूत्प्रेक्षा में भी ग्रहीत किया जा सकता है।

(२) हरिजन जानि प्रीति अति बाढ़ी।
सजल नयन पुलकावलि ठाढ़ी॥ [तुलसी, रा० च० मा०]

सूचना

'प्रत्यनीक' में हेतूत्प्रेक्षा से यही भिन्नता है कि इसमें शत्रु के सम्बन्धी का तिरस्कार या मित्र के सम्बन्धी का आदर रहता है।

सहोक्ति

जहाँ सह अर्थ बोधक शब्दों के बल से एक ही शब्द दो अर्थों का बोधक होता है—वहाँ सहोक्ति अलंकार होता है।

अथवा

जहाँ एक पदार्थ का 'सह' आदि सहार्थवाची शब्दों के साहचर्य से दूसरे पदार्थों के साथ सम्बन्ध स्थापित किया जाय, वहाँ 'सहोक्ति' होता है।

सह, संग साथ, सार्थ, समेत, आदि सहार्थवाची शब्द हैं।

उदाहरण

(१) जस प्रताप वीरता बड़ाई।
नाक पिनाकहिं संग सिधाई॥ —रा० च० मा०

[यहाँ पिनाक के जाने के साथ राजाओं ने यश प्रताप वीरता और नाक का भी जाना वर्णित है।]

(२) "मन सँग रक्ताधर भये, सैसव सँग गति मन्द।
मनमथ सँग गुरुता लहीं तरुनी कुचन अमन्द।"

[मन के साथ अधर भी अनुरक्त हुए, शैशव के साथ गति भी मंद हुई, काम के साथ-साथ उरोज बढ़े।]

(३) मुनिनाथ के गात रुमोचन साथहि वो सहसा सिवचापउठायौ।
नरनाथन के मुख मण्डल साथहि जो अवनीतल ओर नमायो।
मिथिलेस-सुता-पन साथहि त्यों पुनि खैंचि कै जो छिन माँहि चढ़ायौ,
भृगुनाथ के गर्व अखंडित साथ सो खंडित कै 'रघुनाथ' गिरायौ।
[कन्हैयालाल पोद्दार]

(४) विसिख भुजँग तव फुकरत उड़ि नभ लगि मँडरात,
अरि-अपजसु तेरो सुजस संग लपैटि लै जात।
[वियोग हरि : वीरसतसई]

(ख)

(१) निज पलक मेरी विकलता साथ ही,
अवनि से उर से मृगेक्षिणि ने उठा।
एक पल निज शस्य श्यामल दृष्टि से,
स्निग्ध करदी दृष्टि मेरी दीप से।
[पन्त : ग्रन्थि]

(२) अब भी सब साज समाज वही,
तब भी सब आज अनाथ यहाँ।
सखि, जा पहुँचे सुध संग कहीं,
यह अन्ध-सुगन्ध समीर वहाँ।
[गुप्त : यशोधरा]

विनोक्ति

जहाँ प्रस्तुत की अप्रस्तुत के बिना शोभनता अथवा अशोभनता का वर्णन होता है वहां 'विनोक्त' अलंकार होता है। (बिना, हीन, रहित आदि शब्द इसके वाचक हैं)

उदाहरण

(१) "शशिबिन सूनी रैन, ज्ञान बिन हिरदै सूनो।
कुल सूनो बिन पुत्र पत्र बिन तरूवर सूनो।
गज सूनो इक दन्त बिना वन पुहुप विहूनो।
विप्र सून बिर वेद लहर बिन सायर सूनो।"

[वेताल]

(२) उर सिंहासन सजा धजा यह,
शून्य तुम्हारे बिना पड़ा।

[सुधीन्द्र : जौहर]

(३) बिना दुख के सब सुख निस्सार,
बिना आँसू के जीवन भार। [पन्त]

सूचना

[इसमें प्रायः सादृश्य का आधार लिया जाता है]

सम

जहाँ सम-सम्बन्ध की योजना द्वारा चमत्कार व्यंजित किया जाता है, वहाँ सम अलङ्कार होता है।

उदाहरण

(१)

[वस्तु-सम्बन्ध]

(१) तू दयाल दीन हौं तू दानि हौं भिखारी।
हौं प्रसिद्ध पातकी तू पाप-पुञ्ज हारी।

नाथ तू अनाथ को, अनाथ कौन मोसों।
मो समान आरत नहिं आरति हर तौसों।

[तुलसी : विनयपत्रिका]

(२) दोनों ओर प्रेम पलता है,
सखि पतंग भी जलता है,
दीपक भी जलता है ?

(३) तुम तुंग हिमालय शृंग,
और मैं चंचलगति सुरसरिता।

(२)

[कारण-कार्य सम्बन्ध]

(१) बड़वानल, विस, व्याल संग रह्यो जो जलनिधि माँहि।
अबलन कों दुख देत ससि या में अचरज काहि ?

[क० ला० पो०]

(२) राघव तेरे ही योग्य कथन है तेरा,
दृढ़ बाल हठी तू वही राम है मेरा। [गुप्तजी : साकेत]

(३)

[निर्विघ्न-कार्य सिद्धि सम्बन्ध]

(१) जल बसि नलिनी तप कियो ताको फल वह पाय।
तेरे पद ह्वै या जनम सुगति लही उन आय॥

अन्योन्य

जहाँ दो वस्तुओं का परस्पर कारण, अवलम्ब या अन्य सम्बन्ध वर्णित हो, वहाँ 'अन्योन्य' अलङ्कार होता है।

उदाहरण

(१) सोहत ताल मरालसों तालहि सों जु मराल।
करत परस्पर हैं सदा गुरुता प्रकट विशाल॥

(२) कल्पना तुममें एकाकार, कल्पना में तुम आठों याम।
तुम्हारी छवि में प्रेम अपार, प्रेम में छवि अविराम॥

[पन्त : गुञ्जन]

(३) मैं ढूँढ़ता तुझे था जब कुंज और बन में।
तू खोजता मुझे था तब दीन के वतन में॥

[रा० न० त्रिपाठी]

विशेष

जहाँ आधार-आधेय विषयक विशेषता या विलक्षणता का वर्णन हो वहाँ 'विशेष' अलंकार होता है।

इसके कई प्रकार हो सकते हैं—

उदाहरण

[आधार रहित आधेय]

(१) आज वह पात्र नहीं मधु जिसमें पीऊँ मैं।
फिर भी अविराम मधुपान करता हूँ मैं॥

[एक आधेय अनेक आधार]

आँखों की नीरव भिक्षा में आँसू के मिटते दागों में,
ओठों की हँसती पीड़ा में, आहों के बिखरे त्यागों में।
कन कन में बिखरा है निर्मम,
मेरे मानस का सूनापन। [महादेवी]

सूचना—इसके भेद दूसरे अलंकारों में अन्तर्भूत हो सकते हैं।

———

अधिक

जहाँ आधार-आधेय का न्यूनाधिक्य (अर्थात् असम सम्बन्ध) चमत्कारिक रीति से वर्णित हो, वहाँ अधिक अलङ्कार होता है।

उदाहरण

(१)

(आधार की उत्कृष्टता)

(१) जा जदुपति के उदर में सिगरो बसत जहान।
सुखसों राखत ताहि तू हियरे हार समान॥

(२) खिलजी के छोटे से उर में,
उठ आया आह्लाद बड़ा।
[सुधीन्द्र : जौहर]

(२)

[आधेय की उत्कृष्टता]

(१) शिव प्रचण्ड कोदंड को तानत प्रभु भुजदंड।
भवो खण्ड वह चण्डरव नहिं मायो ब्रह्मण्ड॥

[ब्रह्मांड (आधार) यद्यपि बड़ा है—फिर भी 'नहिं मायो ब्रह्मांड' कहकर उसे छोटा बताकर रव (आधेय) को बड़ा बताया है।]

अल्प

जहाँ अल्प (या लघु) आधेय और अधिक आधार का सम्बन्ध व्यञ्जित हो वहाँ 'अल्प' अलङ्कार होता है।

(इसमें वस्तुतः बड़ा आधार भी, आधेय की अपेक्षा छोटा वर्णित किया जाता है।)

(क)

(१) सुनहु श्याम ब्रज में जगी दसम दसा की जोति।
जहँ मुँदरी अँगुरीन की कर में ढीली होति॥"

[अज्ञात]

(यहाँ आधार (हाथ) बड़ा होते हुए भी सूक्ष्म बताया गया है और आधेय (मुँदरी) को—'ढीली होत' कहकर बड़ा बताया है।)

(२) अब जीवन कौ है कपि आस न मोहिं।
कनगुरिया की मुँदरी कंकन होहि॥

[तुलसी : बरवैरामायण]

विकल्प (Alternation)

समशील (तुल्य बल वाली) बातों में जहाँ विकल्प की भावना दिखाई जाती है—(यह हो या वह हो) :—'वहाँ 'विकल्प' अलंकार होता है।

उदाहरण

(क)

(२) पटकूँ मूँछा पाण, कै पटकूँ निज-तन-करद।
दीजै लिख दीवाण। इण दो महली बात इक।

[यहाँ मूँछों पर ताव देना और अपने शरीर पर तलवार चलाना तुल्य बल हैं—यह दोनों बातें एक काल में सम्भव नहीं अतः 'महली' (में से) शब्द द्वारा विकल्प वर्णित है।

(२) कै तो हरि हाथन मैं सस्त्र पकरैहों आज,
कै लै कबौं पन धनु बान न उठैहों मैं।
[यहाँ 'कै' के प्रयोग द्वारा विकल्प कहा गया है]

(३) होगी या तो प्राण पद्मिनी,
या न रहेंगे पामर प्राण।
(सुधीन्द्र : जौहर)

परिवृत्ति (Barter or Exchange)

जहाँ सम और असम का साथ-साथ या परस्पर विनिमय होता है वहाँ परिवृत्ति अलंकार होता है।

इसमें उत्तम वस्तु देकर उत्तम, या अधम वस्तु देकर अधम अथवा उत्तम वस्तु से अधम या अधम से उत्तम का विनिमय हो सकता है।

उदाहरण

'सम' परिवृत्ति (उत्तम वस्तु देकर उत्तम वस्तु लेना)

(१) "मुझको कुछ करने योग्य काम बतलाओ।
दो अहो नव्यता और भव्यता पाओ।"
[गुप्त : साकेत]

(२) काया को खोकर करते हैं हम अपने यश का सर्जन।
प्राणों को व्यय कर करते हैं हम अपना गौरव अर्जन।

(३) सच्चे शूर प्राण धन देकर मोल वीर गति लेते हैं।
[सुधीन्द्र : जौहर]

(४) "लतिकाओं को नृत्यकला की शिक्षा देकर धीर समीर।
मधुर-मधुर लेता है उसका सुमनगंध मनहर गम्भीर।"
[क० ला० पो०]

[न्यून वस्तु देकर न्यून वस्तु लेना]

(१) अस्थि माल मय अपने तन को अर्पण वे करते हैं,
मुण्डमालमय तन उनसे बस परिवर्तन में लेते हैं।

विषम परिवृत्ति (उत्तम देकर न्यून लेना)

(१) "कासों कहिये आपनी यह अजानि जदुराइ।
मन मानिक दीन्हो तुमहिं लीन्हीं बिरइ बलाइ।"

(२) "क्रांति हो चुकी श्रांति मेट अब आ व्यजन करूँगी।
मोती न्यौछावर करके वे श्रमकण बीन धरूँगी।"

(३) "तुम कौन धौ पाटी पढ़े हौ लला,
मन लेत हौ देत छटाँक नहीं।"

[घनानन्द]

(४) मेरो अतिथि देव आवे तो मैं सिर माथे लूंगी।
उसने मुझको देह दिया मैं उसे प्राण भी दूंगी।

[गुप्त जी]

[इसमें न्यून लेकर उत्तम देने की बात कही गई है। न्यून देह से उत्तम प्राणों का विनिमय है]

समुच्चय

जहाँ एक परिस्थिति में अनेक वस्तुओं, गुणों कारणों, क्रियाओं, आदि का समुच्चय या एकत्री भाव दिखाया जाता है वहां समुच्चय अलंकार होता है।

'समुच्चय' अनेक प्रकार का हो सकता है—

[गुण समुच्चय]

(१) "आली तू ही बतादे इस विजन बिना मैं कहाँ आज जाऊं।
दीना हीना अधीना ठहर कर जहाँ शांति दूं और पाऊं।"

[गुप्त : साकेत]

(२) तुम सुन्दर सुषमामयी कान्त कमनीया,
तुम रुचिर चारु बन गईं प्रकृति में माया।

[सुधीन्द्र : प्रेयस]

(३) पात्र भी मधु भी मधुप भी मधुर विस्मृति भी।
अधर भी हूँ और स्मित की चाँदनी भी हूँ—

[महादेवी]

[वस्तु-समुच्चय]

(क) हर लेते हो विभव, कला कौशल चिर संचित।
(ख) आधि व्याधि बहु वृष्टि, पात, उत्पात, अमंगल।
वह्नि, बाढ़,. भूकम्प तुम्हारे विपुल सैन्य दल।

[पन्त]

[क्रिया-कार्य समुच्चय]

(१) "हे हरि तुम बिन राधिका सेज परी अकुलाति।
तरफराति, तमकति, तचति, सुसकति, सूखी जाति।"

(२) सूखे से स्रमे से सकपके से सके से थके,
भूल से भ्रमे से भभरे से भकुवान से।
हौले से हले से हूल हूले से हिये मैं हाय,
हारे से हरे से रहे हेरत हिराने से।

[रत्नाकर : उद्धवशतक]

(३) कृष्ण के संग ही तुम्हारा नाम होगा धाम होगा।
प्राण होगा, कर्म होगा, विभव होगा, कामना भी।

[उदयशङ्कर भट्ट]

[कारण-समुच्चय]

(१) धन जोवन बल अज्ञता मोह मूल इक एक।
दास मिलै चारौं जहाँ पैये कहाँ विवेक ?"

[भिखारी दास]

(१) तात वचन, पुनि मातु हित, भाइ भरत अस राउ।
मोकहँ दरस तुम्हार प्रभु, सब मम पुन्य प्रभाऊ।

[तुलसीदास]

सूचना

कहीं-कहीं गुण, धर्म, क्रिया, कारण आदि का संयुक्त समुच्चय भी हो सकता है।

समाधि

जहाँ आकस्मिक कारण-योजना से कार्य की सहज सिद्धि सूचित की जाती है वहां 'समाधि अलंकार होता है।

"सम्यक आधि : अधानं (उत्पादन) समाधि" अर्थात् सुचारु रूप से सुख पूर्वक कार्य होना 'समाधि' का अर्थ है। इसे दण्डी आदि ने 'समाहित' भी कहा है।

उदाहरण

(१) "मान मिटावन हित लगे विनय करन घन श्याम।
तौ लौ चहुँ दिसि उमडि के नभ छाये घन स्याम।"

[कन्हैयालाल पोद्दार]

(२) निरखन को मम बदन छवि पठई दीठि मुरारि।
इत हा! चपल समीरनैं घूँघट दियौ उघारि।

[अज्ञात]

सूचना

इसी से मिलता-जुलता अलंकार प्रहर्षण है।

यथासंख्य

जहाँ अनेक क्रमागत पदार्थों के गुणों, धर्मों, व्यापारों अथवा फलों का यथाक्रम वर्णन (निर्वाह) होता है; वहाँ 'यथासंख्य' (या क्रम) अलंकार होता है।

उदाहरण

(१) अमी, हलाहल, मद भरे स्वेत, स्याम, रतनार।
जियत, मरत, झुकि झुकि परत, जेहि चितवत इक बार॥

[रसलीन]

[यहाँ आँखों के अमृत, विष और सुरा, के क्रमशः श्वेत, श्याम और रक्तिम वर्ण तथा उनके धर्म प्रभावों—जीते, मरते और मस्त होने का यथाक्रम वर्णन है।]

(२) आनन,	बेनी,	नैन,	बैन,	पुनि दसन	सुकटि,	गति।
ससि,	सर्पिन,	मृग,	पिक,	अनार,	केहरि,	करनिन-पति
पुरन	खिझत	जक,	तरुन,	पक्व,	बर पंच,	पुष्टबल
सरद,	पाताल,	विछोह,	बाग,	तरु,	गिरि,	बन कज्जल
	सविवेस	सावक,	चुबत,	विगस,	प्रसूती.	मद झरत

'पृथिराज' भनत बंसी बजत अस बनिता वन-वन फिरत।

[पृथ्वीराज]

[प्रथम चरण में जो सात पदार्थ हैं वे उपमेय हैं, दूसरे चरण में क्रमशः उनके उपमान हैं, तीसरे में, चौथे में तथा

पाँचवें में क्रमशः उनके धर्म तथा विशेषण हैं और क्रम का पूर्व निर्वाह हुआ है।]

(३) वसन्त[१] ने, सौरभ[२] ने, पराग[३] ने,
प्रदान की थी अति कान्त भाव से।
वसुन्धरा[१] को, पिक[२] को, मलिन्द[३] को,
मनोज्ञता[१], मादकता[२], मदान्धता[३]।
प्रियप्रवास [हरिऔध]

(४) शक्तिमान[१], समृद्ध[२], सुखी,[३] यों शाहंशाह अलाउद्दीन।
एक पद्मिनी बिना बना था मन में नि ल[१], दीन[२], मलीन[३]।
जौहर [सुधीन्द्र]

(५) संगर में जब रुस्तम ने अपने विजयी पर हाथ उठाये।
खंग, कटार, गदा अरु पाश के अद्भुत यों करतब दिखाये।
काटि गिरावत, फारत, तोरत, बाँधत चारि छणौ न लगाये।
शत्रुन के सिर, और उरस्थल, पाद भुजा नहिं जायँ गनाये।

पर्याय

जहाँ किसी आधेय वस्तु का अनेक आधारों में अथवा इसका विलोम पर्याय (क्रम) से होना दिखाया जाता है वहाँ पर्याय अलंकार होता है।

उदाहरण

[अनेक आधार : एक आधेय]

(१) अलि कहाँ संदेश भेजूँ ?
मैं किसे सन्देश भेजूँ।

नयन पथ से स्वप्न में मिल,
प्यास में घुल साँस से खिल,
प्रिय मुझी में खो गया अब,
दूत को किस देश भेजूँ ? [महादेवी]

(२) वही प्रज्ञा का सत्य स्वरूप,
हृदय में बनता प्रणय अपार।
लोचनों में लावण्य अनूप,
लोक सेवा से शिव अविकार। [पन्त]

[अनेक आधेय : एक आधार]

(१) अमृत भरे दीखत प्रथम मधुर खलन के बैन।
मोह हेतु पीछे बनै अन्तर विष-दुख-दैन ॥

[यहाँ खल के बचन (एक आधार) में अमृत और विष (अनेक आधेय) दोनों ही कहे गये हैं।]

(२) पहले था बालापन तन में, फिर तारुण्य मधुर आया।
अब वार्धक्य प्रविष्ट हुआ तो भी हरिध्यान नहीं भाया ॥

[यहाँ एक ही आधार (शरीर) में अनेक आधेयों (बालापन, तारुण्य और वार्धक्य) का वर्णन है।]

परिसंख्या

जहाँ किसी पदार्थ, धर्म (गुण) अथवा व्यापार को अन्य सब स्थानों से वर्जित करके एक ही स्थान पर स्थापित कया जाता है—वहाँ 'परिसंख्या' अलंकार होता है। इसमें प्रायः चमत्कारपूर्वक शब्द-श्लेष का आश्रय लिया जाता है।

उदाहरण

(१) मूलन ही की जहाँ अधोगति केसव गाइय।
होम हुतासन धूम नगर एकै मलिनाइय॥
दुर्गति दुर्गन ही, जो कुटिलगति सरितन ही में।
श्रीफल को अभिलाषा प्रकट कविकुल के जी में॥

[रामचन्द्रिका]

यहाँ अधोगति, मलिनता, दुर्गति, श्रीफल को अन्य स्थानों में न दिखाकर क्रमशः 'मूल' (जड़), होम हुताशन धूम, दुर्ग, सरिता और कविहृदय में स्थापित की गई है क्योंकि उनका अर्थ-श्लेष होने से वह सिद्ध है।

(२) वारमुखी में वार अब, युवति मान में मान।
रँग अबीर में बीर त्यौं कहियतु कोस-प्रमानु॥

[वियोगी हरि : वीर सतसई]

[अब वारमुखी में ही वीरों का 'वीर' है, युवतियों के मान (रूठने) में ही 'मान' रह गया है, अबीर रंग में ही 'वीर' बच गया है कोष (म्यान) प्रयान (यात्रा) में ही है।]

(३) जहाँ वक्रता सर्प की चाल में थी,
प्रजा में नहीं थी न भूपाल में थी।
नदी में नहीं कालिमा थी घनों में,
जनों में नहीं शुष्कता थी घनों में।

[रामचरित उपाध्याय]

कभी-कभी प्रश्न या निषेधपूर्वक यह स्थापना होती है—

(१) अति चंचल जहँ चलदलै विधवा बनी न नारि।
मनमोहो ऋषिराज को अद्भुत रूप निहारि॥

(२) उत्तम भूषण कौन ? यश, नहिं कनकालङ्कार।
सखा कौन जग ? धर्म है, नहिं नर आदिक यार॥

सूचना

कहीं कहीं निषेध प्रतीयमान ही होता है जैसे—

देह में पुलक उरों में भार,
भ्रुवों में भंग, दृगों में वाण,
अधर में अमृत, हृदय में प्यार,
गिरा में लाज, प्रणय में मान। [पंत]

शृंखला मूलक

एकावली (Necklace)

जहाँ अनेक पदार्थों की (विशेषय विशेषण भाव, आधेय धार भाव से) पूर्वोत्तर शृंखला स्थापित हो जाती है वहाँ 'एकावली' अलंकार होता है।

एकावली का अर्थ माला होता है। इस अलंकार में एक के बाद दूसरा पदार्थ ग्रहीत और त्यक्त होकर क्रम पूर्वक ग्रथित होता है।

उदाहरण

(१) विशेष्य-विशेषण भाव

(१) सोभित सो न सभा जहँ वृद्ध न वृद्ध न तेजु पढ़े कछु नाहीं।
ते न पढ़े जिन साधु न साधित, दीह दया न हियै जिन माहीं।
सो न दयाजु न धर्म धरै धर धर्म न सो जहँ दान वृथा ही।
दान न सो जहँ सांच न केशव, साँच न सों जु बसै छल छाहीं।
[केशवदास]

(२) सोहत सर्वसहा सिव सैल तें सैलहु कामलतान उमंग तें।
कामलता विलसै जगदंब ते अम्बहु संकर के अरधंग तें।
संकर अंगहु उत्तम अंग तें उत्तम अंगहु चंद प्रसंग तें।
चंद जटान के जूटन राजत जूट जटान के गंग तरंग तें।

[भाषा : भूषण]

(३) "निर्मल चाँदनी छिटकी हुई थी, वह कार्त्तिक की चाँदनी, जिसमें, संगीत की शान्ति है, शान्ति का माधुर्य है, और माधुर्य का उन्माद है।"

[प्रेमचन्द : गबन]

(२) आधेय-आधार भाव

(क)

(१) कूरम पै कोल कोल हू पै सेस-कुण्डली है,
कुण्डली पै फबी फैल सुफन हजार की !
कहै 'पदमाकर' त्यौं फन पै फबी है भूमि,
भूमि पै फबी है तिथि रजत-पहार की !
रजत अहार पर संभु सुरनायक हैं,
संभु पर ज्योति जटाजूट है अपार की।
संभु जटाजूटन पै चन्द्र की छुटी है छटा,
चन्द्र की-छटान पै छटा है गंग धार की।"

[पदमाकर]

(ख)

(२) वन में चारों ओर मनोरम मादक मधुर बसंत खिला !
वृक्षों में वल्लरी खिली है, वल्लरियों में वृन्त खिला !
वृन्तों में नव-सुमन खिले हैं, उर के मुक्ताहार बने !
कलित किसलियों के वे मोती गृह में बन्दनवार बने।

[सुधीन्द्र : जौहर]

(३) "पुष्कर सोता है निज सर में,
भ्रमर सो रहा है पुष्कर में।
गुंजन सोया कभी भ्रमर में,
सो मेरे गृह गुंजन सो।
[गुप्त : यशोधरा]

(४) वृन्दावन में नव मधु आया मधु में मन्मथ आया।
उसमें तन, तन में मन, मन में एक मनोरथ आया।
[गुप्त : द्वापर]

सूचना

इसी में जब कारण और कार्य की माला बनती है तो भिन्न 'कारण माला' अलंकार होता है।

कारणमाला (गुम्फ)

जब पदार्थों की शृंखला कार्य-कारण भाव द्वारा गुम्फित होती है तब 'कारणमाला' होती है। इसका दूसरा नाम 'गुम्फ' है।

'एकावली' का ही इसे एक भेद समझ सकते हैं परन्तु अलङ्कार शास्त्री इसे पृथक ही मानते आये हैं।

कार्य-कारण और कारण-कार्य—द्विविधि गुम्फन के कारण यह द्विविध हो सकती है—

(१) कार्य कारण

(१) "राम कृपा ते परम पद कहत सयाने लोय।
राम कृपा है भगित तें भगति भाग्य ते होय।"

(२) "है सुख सम्पति सुमति ते सुमित पढ़े ते होई।
पढ़त होत अभ्यास ते ताहि तजहु मति कोई।

(३) जो इस माला की सुमेरु है,
जो है फूलों की माला !
जो नंदन से गिरा फूल है,
जो भू पर नन्दन—वाला !

[सुधीन्द्र : 'जौहर']

(१) कारण-कार्य

(१) बिन सतसंग न हरि कथा, तेहि बिनु मोह न भाग।
मोह गये बिनु राम पद होइ न दृढ़ अनुराग ।

(२) विद्या ददाति विनयं विनयं ददाति पात्रताम्।
पात्रत्वाद्धन माप्नोति धनाद्धर्म ततःसुखम् ॥
विद्या देती विनय को, विनय पात्र को पात्रता,
देती है धन पात्रता, धन धर्म, धर्म सुख को।

(३) बिनु बिस्वास भगति नहिं, तेहि बिन द्रवहिं न राम।
राम कृपा बिन सपनेहुँ, जीव न लह बिसराम।

[तुलसी]

सूचना

इसीमें जब उत्तरोत्तर उत्कर्ष या अपकर्ष की शृंखला हो तो एक अन्य अलंकार 'सार' होता है।

सार (Climax or Anticlimax)

जहाँ शृङ्खलाबद्ध वर्णित पदार्थों में उत्तरोत्तर उत्कर्ष (या अपकर्ष) दिखाया जाता है, वहाँ 'सार' होता है। सार का अर्थ यहाँ उत्तरोत्तर उत्कर्ष (तथा अपकर्ष) है।

उदाहरण

(उत्कर्ष)

(१) सब मम प्रिय सब मम उपजाये।
सबतें अधिक मनुज मोहिं भाये॥
तिन महँ द्विज, द्विज महँ श्रुतिधारी।
तिन महँ निगम नीति-अनुसारी॥
तिन महँ पुनि विरक्त पुनि ज्ञानी।
ज्ञानिहु ते अति प्रिय विज्ञानी॥
तिनतें मोहिं अति प्रिय निज दासा।
जेहि गति मोरि न दूसरि आसा॥

[तुलसी]

(अपकर्ष)

(२) तृन तें तूल रु तूल तें हरवो जाचक जान।
(माँगन सकुच न पौनहू जिहि न लियो संग ठान॥)

(३) सिला कोठरी काठ तें तातें लोह कठोर।
ताहू ते कीन्हो कठिन मन तुम नन्दकिसोर॥

व्याजस्तुति : व्याजनिन्दा

[व्याज = बहाना]

जहाँ व्यंग्यप्रधान शब्दों से स्तुति अथवा स्तुति ने निन्दा का बोध होता है, वहाँ व्याजस्तुति (अथवा व्याजनिन्दा) अलंकार होता है।

इसमें निन्दा में स्तुति व्यंग्य रहती है और स्तुति में निन्दा। अतः इसके दो भेद हो सकते हैं—

उदाहरण

[निन्दा में स्तुति]

(१) बावरो रावरो नाह भवानी।
दानि बड़ो नित देत दये बिन
वेद बड़ाई मानी।

× × ×

जिनके भाल लिखी लिपि मेरी,
सुख की नहीं निसानी।
तिन रंकन को नाक सँवारत,
हौं आयो नकबानी।

[तुलसी : विनयपत्रिका]

(२) एक बात मैं कहूँ अगर तुम बुरा न मानो—
अपने पास नहीं अपने प्राणों में बिठला,
तुमने मुझको इस दुनिया से दूर किया है।
जिन प्राणों ने नहीं कभी बन्धन था जाना,
उनमें जोड़ी ग्रन्थि किया कुछ एक बहाना। [सुधीन्द्र]

(३) जो वरमाला लिये आप ही तुमको वरने आई हो।
अपना तन मन धन सब तुमको अर्पण करने आई हो॥
मज्जागत लज्जा तजकर भी तिस पर करे स्वयं प्रस्ताव।
कर सकते हो तुम किस मन से उससे भी ऐसा प्रस्ताव॥

[सीता द्वारा लक्ष्मण की इस निन्दा में 'स्तुति' व्यंग्य है।]

[स्तुति में निन्दा]

(१) "आत्मज्ञान हीन वह मुग्धा वही ज्ञान तुम लाये।
धन्यवाद है बड़ी कृपा की कष्ट उठाकर आये॥" [गुप्त]

(२) "तरु सेमर का जगतीतल में यह भाग्य कहो कम है किससे?
जिसके अरुणप्रभ पुष्प खिले लख लज्जित हो सरसीरुह से।
समझें जलजात मराल तथा मकरन्द-प्रलोभित भृंग जिसे।
करके फल आश विहंगम है अनुरक्त सदा रहते जिससे।"

[क० ला० पो०]

'व्याजस्तुति' और 'अप्रस्तुत प्रशंसा'

'व्याजस्तुति और अप्रस्तुत प्रशंसा' में अन्तर यह है कि व्याजस्तुति में एक ही प्रस्तुत व्यक्ति की निन्दा में स्तुति और स्तुति में निन्दा व्यंग्य होती है, परन्तु 'अप्रस्तुत प्रशंसा' में इसके विपरीत अप्रस्तुत की निन्दा या स्तुति से प्रस्तुत की निन्दा या स्तुति होती है।

'सूक्ष्म'

इङ्गित या चातुर्य्य द्वारा तीक्ष्ण बुद्धि वाले सहृदय जनों को विशेष अर्थ सूचित किया जाना 'सूक्ष्म' अलङ्कार है।

[चेष्टा द्वारा लक्षित सूक्ष्म]

(१) बहुरि बदन विधु अंचल ढाँकी,
पिय तन चितै भौह करि बाँकी।
खंजन मंजु तिरीछे नैननि,
निज पति कहेहु तिन्हहि सिय सैननि ॥

[तुलसी : रामचरित मानस]

(२) मोर पखा ससि सीस धरै श्रुति में मकराकृत कुण्डलधारी।
काछ कछै पट-पीत मनोहर कोटि मनोजन की छवि वारी।
'छत्रपती' भनि लै मुरली कर आइ गये तहँ कुन्जबिहारी।
देखत ही त्रख लाल के बाल प्रवाल की माल गले बिच डारी ॥

[उक्ति द्वारा लक्षित सूक्ष्म]

(१) "शुभे, तुम्हारे कौन उभय ये श्रेष्ठ हैं?"
"गोरे देवर, श्याम उन्हीं के ज्येष्ठ हैं।"
वैदेही यह सरल भाव से कह गई,
तब भी वे कुछ तरल हँसी हँस रह गईं। [गुप्त : साकेत]

पिहित

जहाँ एक ही आश्रय में दो असमान गुण रहते हैं और उनमें से एक अपनी प्रबलता के कारण दूसरे को ढक लेता है तो वहाँ पिहित अलंकार होता है।

पिहित का अर्थ है—आच्छादन करना (दूसरे पदार्थ को ढक लेना)।

उदाहरण

मृदु ससि कला कलाप सम तेरी तन दुति माँहि,
यह कृशता-प्रिय-विरह की सखि, किहिं कौन लखाहि।

[यहाँ चन्द्रकला सी कान्ति और कृशता असमान होते हुए भी एक ही आश्रय (नायिका का शरीर) में स्थिति है। पर अंग की कान्ति ने कृशता को ढक लिया है।]

सूचना

रुद्रट ने 'पिहित' अलंकार को 'सूक्ष्म' से पृथक माना है। जबकि काव्यप्रकाश में इसे 'सूक्ष्म' का ही एक प्रकार माना गया है। वस्तुतः रुद्रट के अनुसार पीहित अलंकार सूक्ष्म से भिन्न है।

व्याजोक्ति : युक्ति

जहाँ प्रकट हुए गोपनीय रहस्य को छद्म कथन द्वारा गोपन (छिपाये जाने) का आशय होता है, वहाँ 'व्याजोक्ति' अलंकार होता है।

'व्याजोक्ति' अलङ्कार में पूर्व आचार्यों ने गोपन का उद्देश्य आवश्यक माना है, अतः इसे सूक्ष्म से भिन्न बताया जा सकता है।

उदाहरण

(१) ललन चलन सुन पलनु में अँसुआ झलके आय।
भई लखानन सखिन हूँ झूठे ही जमुहाइ ॥

[विहारी : सतसई]

(२) "बैठी हुती ब्रज की बनितान में आइगयो कहुँ मोहनलाल है।
हौ गई देखत मोदमयी, निहाल भई वह बाल रसाल है।
रोम उठे तन काँप्यो कछू मुसकात लख्यो सखियान को जाल है।
'सीरी बयारि बही सजनी, उठियो कहिकै उन ओढ्यो जु साल है।"

[अज्ञात]

सूचना

कई आलंकारिकों ने इसके उदाहरण ऐसे दिये हैं जो कभी अप्रस्तुत प्रशंसा (अन्योक्ति) से मिल जाते हैं।

कुछ आलंकारिक इसे उक्ति भी कहते हैं। परन्तु 'उक्ति' नाम में लक्षण की दृष्टि से अव्याप्ति दोष है—अतः वह नाम उचित नहीं।

गूढ़ोक्ति

जहाँ वक्ता का उद्देश्य कथित कथन को श्रोता से भिन्न व्यक्ति को सुनाने के लिए होता है वहाँ 'गूढ़ोक्ति' अलंकार होता है।

उदाहरण

(१) रे गन्धी मतिमंद तू अतर सुँघावत काहि।
करि फुलेल को आचमन मीठो कहत सराहि॥"

[बिहारी-सतसई]

गन्धी से कहे गये इस कथन का उद्देश्य उसके लिए नहीं है अन्य के लिए है।

(२) एरे वीर सावन सुहावन लायो है यह,
अब तौ उमंग निज हिय की पुजै है री।
सोरहू सिंगार करि द्वादस आभूषण हू,
'रसिक बिहारी' अंग अति ही सजै है री।
सखिन दुराय गुरु लोगन बचाय दीठि,
निपट अकेली संग काहू कौ न लैहै री।
बीतै निसिजाम जब चन्द छिपि जैहैं तबै,
तेरे मौन झूलन हिंडोल आज एहै री।

[प्रेमी को संकेत स्थल तथा समय सुनाने के लिए नायिका ने यह बात सखी के प्रति कही है।]

विशेष

इस अलंकार में श्रोता से भिन्न व्यक्ति का स्थल पर प्रस्तुत होना तथा उसको सुनाया जाना आवश्यक है अन्यथा यह 'प्रस्तुतांकुर' या पर्यायोक्ति से मिल जायेगा।

'लोकोक्ति'

जहाँ अभीप्सित अर्थ का बोध प्रचलित लोकोक्ति द्वारा कराया जाता है, वहाँ 'लोकोक्ति' अलंकार होता है।

उदाहरण

(१) मुसकाई मिथिलेश नन्दिनी प्रथम देवरान्नी फिर सौत।
अंगीकृत है मुझे किन्तु तुम नहीं माँगना मेरी मौत॥
मुझे नित्य दर्शन भर इनके तुम करते रहने देना।
कहते हैं इसको ही 'अँगुली पकड़ प्रकोष्ठ पकड़ लेना॥'

[मैथिलीशरण गुप्त, पंचवटी]

(२) अपनी पहुँच विचारि के करतब करिये दौर।
तेतो पाँव पसारिये जेती लाँबी सौर॥

किसी पूर्व कवि की उक्ति का समावेश भी इसमें हो सकता है:—

(१) 'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्।'
रटते रहते हरदम हम।

(२) धर्म वाक्य है यह नामी—
"बुद्धं सरणं गच्छामी
धर्म्मं सरणं गच्छामी
संघं सरणं गच्छामी।"
पर अब तो रटते कामी—
युद्धं शरणं गच्छामी।
शस्त्रं शरणं गच्छामी।
नाशं शरणं गच्छामी। [सुधीन्द्र]

(३) "तू जानके भी अनल प्रदीप,
पतंग जाता उसके समीप।
अहो नहीं है इसमें अशुद्धिः
'विनाश काले विपरीत बुद्धिः'।"
[मैथिलीशरण गुप्त]

पर्यायोक्ति*

जहाँ अभीप्सित अर्थ का बोध पर्याय (विशेष भंगिमा से)

---

* पूर्व शास्त्रकारों ने इसका नाम 'पर्यायोक्त' दिया है, परन्तु इस प्रकार के अन्य नामों से एक रूपता के लिए 'पर्यायोक्ति' नाम ही उचित है।

कराया जाता है, वहाँ 'पर्यायोक्ति' अलंकार होता है।

इसमें प्रकारान्तर से, घुमा फिराकर, वाच्यार्थ ही अभीप्सित होता है।

उदाहरण

(१) वचनों से ही तृप्त हो गये हम सखे,
करो हमारे लिए न अब कुछ श्रम सखे।
वन का व्रत हम आज तोड़ सकते नहीं,
तो भाभी की भेंट छोड़ सकते नहीं।

[गुप्त : साकेत]

(२) नाथ लखन पुर देखन चहहीं।
प्रभु संकोच उर प्रगट न कहहीं॥
जो राउर अनुशासन पाऊँ।
नगर दिखाव तुरत लै आऊँ॥

[रामचरित मानस]

(३) यहि घाट ते थोरिक दूर अहै,
कटि लौं जल थाह दिखाइहौ जू।
परसै पग धूरि तरै तरनी,
घरनी घर क्यों समुझाइहौ जू।
तुलसी अवलम्ब न और कछू,
लरिका केहि भाँति जिआइहौ जू।
बरु मारिये मोहि बिना पग धोये,
हौं नाथ न नाव चढ़ाइहौ जू।

[यहाँ पग धोने का कारण अन्य बताया गया है।]

अनुज्ञा' और तिरस्कार

"किसी उत्कट गुण की लालसा से दोष वाली वस्तु की भी इच्छा किये जाने के वर्णन को अनुज्ञा अलंकार कहते हैं।"
(काव्य कल्पद्रुम)

परन्तु विचार से प्रतीत होगा कि यह भी 'पर्यायोक्ति' का ही एक प्रकार हो सकता है। तिरस्कार अनुज्ञा का विलोम है।

किसी दोष से युक्त होने के कारण गुणवाली वस्तु का भी तिरस्कार किये जाने के वर्णन को 'तिरस्कार' अलंकार कहते हैं। [काव्य कल्पद्रुम]

उदाहरण

(१) जिन होवहु श्रिय विभव औ गज तुरंग बर बाग।
जिनमें रत नर करत नहिं हरि चरनन अनुराग ॥

(२) विष भी युत मान दिया यदि हो,
कर पान उसे मर जाना भला।
सहके अपमान सुधारस ले निज,
जीवन को न गिराना भला ।

[इसमें अनुज्ञा और 'तिरस्कार' का मिश्रण है।]

लेश

जहाँ दोष में गुण और गण में दोष दर्शन हो वहाँ 'लेश' अलङ्कार होता है।

उदाहरण

(१) रहिमन विपदा हू भली जो थोरे दिन होय।
हित अनहित या जगत में जानि परतु सब कोय॥

[रहीम]

(२) यह कुरूपता धन्य कि जिस पर कामी क्रूर न दृष्टि करें।
यह सुरूपता हेय कि जिस पर कामी शत शत वार मरें॥

(३) "वर कुपुत्र जग माहिं नेह फाँस सतपुत्र सौं।"
जग सब दुखद लखाहि हैं विराग को हेतु वह॥

[क० ला० पो०]

आक्षेप (Paralepsis)

जहाँ विवक्षित (अभीप्सित) अर्थ का निषेध या निषेध का आभास हो, वहाँ आक्षेप अलंकार होता है।

उदाहरण

[निषेध—आभास]

(१) खिली देख नव मालती विरह विकल वह बाल।
अथवा कहिवे में कथा कहा लाभ इहि काल॥

[क० ला० पो०]

(२) अवला तेरे विरह में कैसी रहती रात।
निर्दय तुमसे व्यर्थ है कहना भी वह बात॥

[रा० द० मिश्र]

[पक्षान्तर निषेध]

इसमें पक्षान्तर से (अन्य कारण से) निषेध होता है।❀

❀ यह भेद 'कुवलयानन्द' के अनुसार है। जगन्नाथ पंडित राज इसका समर्थन करते हैं।

(१) छोड़ छोड़ फूल मत तोड़ आली ! देख मेरा—
हाथ लगते ही यह कैसे कुम्हलाये हैं।
कितना विनाश निज क्षणिक विनोद में है,
दुःखिनी लता के लाल आँसुओं से छाये हैं।
किन्तु नहीं चुन ले तू खिले खिले फूल सब,
रूप गुण गंध से जो तेरे मन भाये हैं।
जाये नहीं लाल लतिका ने झड़ने के लिये,
गौरव के संग चढ़ने के लिए जाये हैं।

[गुप्त : साकेत]

[निषेध में स्वीकृति]

(३) तुम मुझे पूछते हो नाऊ, मैं क्या जवाब दूँ तुम्हीं कहो !
जा कहते रुकती है जबान, किस मुँह से तुमसे कहूँ रहो !

[सुभद्राकुमारी चौहान]

सूचना

इस भेद विधि में निषेध का भाव भी हो सकता है।

प्रश्न

जहाँ 'प्रश्न' में ही उत्तर निहित या व्यंजित होता है, वहाँ 'प्रश्न' अलंकार होता है।

यह प्रश्न चमत्कारिक होना चाहिए।

[जिज्ञासा]

(१) उठा तब लहरों से कर कौन,
न जाने मुझे बुलाता मौन ? [पन्त : मौन-निमंत्रण]

प्राय: रहस्यवाद छायावाद में यह विशेषरूप से प्रयुक्त होता है।

(३) वे कहते हैं इनको मैं अपनी पुतली से देखूँ ?
यह कौन बता जायेगा किससे पुतली को देखूँ ?"

[महादेवी]

[प्रश्न सूचक]

(४) तुम मुझसे फिर प्रिय परिचय क्या ?
फिर पूँछूँ क्यों मेरे साकी
देते हो मधुमय विषमय क्या ?

[महादेवी]

(५) हे अनन्त रमणीय कौन तुम ?
यह मैं कैसे कह सकता !
कैसे हो क्या हो इसका तो,
भार विचार न सह सकता।

उत्तर

जहाँ चामात्कारिक उत्तर द्वारा—
(१) प्रश्न सूचित हो, (२) प्रश्न में उत्तर निहिति हो, (३) पहेली बुझाई गई हो, वहाँ उत्तर अलङ्कार होता है।

[प्रश्न सूचन]

(१) बनिक ! नहीं गजदंत इत सिंहचर्म हूँ नाँहि।
ललिता लक मुखसुत वधू है मेरे घर माँहि॥

[इस उत्तर वाक्य द्वारा ग्राहक के 'क्या तेरे यहाँ हाथी दाँत और सिंहचर्म हैं ?' इस प्रश्न की कल्पना हो जाती है।]

[प्रश्न में उत्तर]

(१) कोकहिये जल सों सुखी ? का कहिये पर श्याम।
काकहिये जे रस बिना कोकहिये सुख बाम ॥

(२) कहलाने एकत बसत अहि मयूर मृग बाघ।

[पहेलिका]

(१) पान सड़ा क्यों, घोड़ा अड़ा क्यों—फेरा। [खुसरो]

मुद्रा

जहाँ प्रस्तुत अर्थ के साथ कुछ पदों द्वारा कोई विशिष्ट अर्थ भी मुद्रित (सूचित या व्यंजित) हो जाता है, वहाँ मुद्रा अलंकार होता है। इसका नाम बड़ा सार्थक है।

उदाहरण

(१) जिसका सदैव तम दूर करता है सूर,
तुलसी का मानस सदैव ही लहरता।
केशव की चन्द्रिका जहाँ है छहराती छटा,
जिसके विपिन में बिहारी है विहरता।
काव्य देव मन्दिर का देव है पुजारी जहाँ,
भूषण का शंख सिंहनाद-सा घहरता।
हिन्दी के विशाल राजमंदिर में भारतेन्दु।
अपनी अनन्त कीर्त्ति कौमुदी छहरता ! [सुधीन्द्र]

(२) करुणे, क्यों रोती है ? 'उत्तर' में और अधिक तू रोई—
मेरी 'विभूति है जो, उसको 'भवभूति' क्यों कहे कोई ?'
[मैथिली०]

उर्दू कविता में भी इस अलंकार का प्रयोग देखा गया है। एक उदाहरण है—

नज़र बदली जो देखी उस सनम की।
नदी नालों ने फ़ुर्सत एक दम की॥

[प्रस्तुत अर्थ के अतिरिक्त इसमें 'बदली', 'नदी', 'नाला' आदि परस्पर-सम्बद्ध अर्थ भी मुद्रित है।]

सूचना

यह द्रष्टव्य है कि श्लेष की भाँति मुद्रा में दोनों अर्थ उद्दिष्ट नहीं होते।

रत्नावली

जिनका साथ कहा जाना प्रसिद्ध हो—ऐसे प्राकरिणक अर्थों के क्रमानुसार वर्णन को रत्नावली अलंकार कहा जाता है।

इसमें प्रस्तुत वर्णन के साथ ही साथ क्रमानुसार लोक-प्रसिद्ध प्राकरिण अर्थों (वस्तुओं) का भी क्रमशः वर्णन होता है।

उदाहरण

(१) नव नील सरोजन कौं इहि के जुग दीरघ नैनन पत्र दियो।
गज कुम्भन सों इहिंके कुच कुंभन पूरब-पत्त स-दत्त ठयो।
अति बंक भई भृकुटीन तथा स्मर के धनु को अनुवादलयो।
पुनि हास विलास भरे मुख सौं इन खंडन चन्द्र प्रकास कियो॥

[प्रस्तुत नायिका के अंग की शोभा के वर्णन में विद्वानों के 'शास्त्रार्थ के क्रम'* का वर्णन किया है। नायिका के नेत्रों ने नील कमलों को शास्त्रार्थ के लिये पत्र दिया है, कुच रूपी कुम्भों ने हाथी के कुम्भों से पूर्व-पक्ष किया है, बंक भृकुटि ने कामदेव के धनुष का अनुवाद किया और हास्य युक्त मुख ने चन्द्रमा के प्रकाश का खंडन कर दिया है।

स्वभावोक्ति

जहाँ किसी प्रसिद्ध मर्मस्पर्शी भाव का सजीव चित्र शब्दों में प्रस्तुत किया जाता है, वहाँ 'स्वाभावोक्ति' अलङ्कार होता है।

उदाहरण

(१) वह आता—
दो टूक कलेजे के करता
पछताता पथ पर आता।
पेट पीठ दोनों मिलकर हैं एक
चल रहा लकुटिया टेक
मुँह फटी पुरानी झोली का फैलाता।

[निराला : भिक्षुक]

---

* शास्त्रार्थ के क्रम में पहले शास्त्रार्थ के लिए पत्र दिया जाता है, फिर पूर्वपक्ष किया जाता है, उसके बाद प्रतिपक्षी के लेख का अनुवाद किया जाता है और तत्पश्चात् उसका खंडन किया जाता है।

(२) ओढ़े पिताम्बर लै लकुटी बन गोधनाबालन संग फिरौंगी।
भाव तो मेरो सोई रसखान सो तेरे कहे सब स्वाँग धरौंगी।
या मुरलीधर की मुरली अधरान धरी अधरान धरौंगी।

[रसखान]

(३) बहुरि वदन-विधु अंचल ढाँकी।
पियतन चितयि भौंह करि बाँकी।

सूचना

इस अलंकार के अलङ्कारत्व में विद्वजनों को सन्देह है। वस्तुतः ऐसे कई प्रसंग होते हैं जिनमें प्रत्यक्ष अलंकार कोई नहीं होता। फिर भी वे रमणीय होते हैं वे प्रायः भाव का ही सम्यक् चित्र होते है। ऐसे प्रसंग इस अलंकार में समाविष्ट हो जाते हैं।

भाविक

जहाँ भूत अथवा भविष्य का वर्तमान की भाँति प्रत्यक्ष वर्णन किया जाता है वहाँ 'भाविक' अलंकार होता है।

उदाहरण

[भूत का वर्तमान की भाँति वर्णन]

(१) सँभल सँभल कर पलकों के पग धरिये इसमें दर्शकवृन्द।
दलित न हो पायें मानव के लोहू के वे विन्दु अमन्द॥

चमक रहे सम्मुख रजकण वे लेकर रण का हास-विलास।
ये वे कीर्ति स्तम्भ हैं जिन पर लिखा पुण्य-जय का इतिहास॥

[सुधीन्द्र : जौहर]

[इसमें विगत-युद्धस्थल का वर्णन वर्तमान के समान किया है।]

(२) अरे मधुर हैं कष्टपूर्ण भी जीवन की बीती घड़ियाँ।
जब निःसंबल होकर कोई जोड़ रहा बिखरी कड़ियाँ॥

[महादेवी]

[इसमें भी भूत का वर्तमान के समान वर्णन है]

[भविष्य का वर्तमान की भाँति वर्णन]

(१) अरुण अधरों की पल्लव प्रात, मोतियों सा हिलता हिमहास।
इन्द्रधनुषी पट से ढँक गात, बाल विद्युत का पावस लास।
हृदय में खिल उठता तत्काल अधखिले अंगों का मधुमास।
तुम्हारी छवि का कर अनुमान प्रिये प्राणों की प्राण।

[पन्त]

[इसमें भावी प्रियतमा की छवि का अनुमान वर्तमान काल में हुआ है।]

(२) कही जाय क्यों मानिनी! छवि प्रति अंग अनूप।
भावी भूषन भार हू लसत अबहिं तव रूप॥

[भविष्य में भूषणयुक्त होने वाली कामिनी के रूप को वर्तमान में ही भूषणयुक्त कहा गया है।]

सूचना

भूषण ने इसमें समय (काल) के स्थान पर दूरस्थ का निकटस्थ वर्णन करके उसे 'भाविक छवि' नाम दिया है।

प्रौढ़ोक्ति

"उत्कर्ष का जो कारण न हो उसमें कारण की कल्पना किये जाने को प्रौढ़ोक्ति अलंकार कहते हैं।"—काव्य कल्पद्रुम

वास्तव में यह अतिशयोक्ति या हेतूत्प्रेक्षा का ही एक विशेष रूप है। अतः इसका पृथक विवेचन आवश्यक नहीं।

प्रहर्षण

"प्रहर्षण अलंकार में अत्यन्त हर्षकारक पदार्थ की प्राप्ति का वर्णन होता है।" —काव्य कल्पद्रुम

यह एक संचारी भाव है अलंकार नहीं।

वस्तुतः इसके तीन भेदों को समाधि, अथवा अतिशयोक्ति के भेदों में परिगणित किया जा सकता है। इसका पृथक विवेचन आवश्यक नहीं।

विषादन

"वाञ्छित अर्थ के विरुद्ध फल प्राप्त होने के वर्णन को विषादन अलङ्कार कहते हैं।" —काव्य कल्पद्रुम

यह 'प्रहर्षण' का विलोम है। यह भी एक संचारी भाव ही है।

यदि इसे अलंकार मानना ही हो तो उद्योतकार की भाँति इसे 'विषम' का ही एक भेद मान लेना चाहिए, पृथक अलंकार नहीं।

उभयालंकार

जब एक ही स्थान पर एक से अधिक अलंकारों का समन्वय-सम्मिलन हो तो वहाँ उभयालंकार होता है।

इसमें कभी केवल शब्दालंकारों का ही समन्वय होता है, कभी केवल अर्थालंकारों का और कभी शब्दा—अर्था दोनों का।

इन अलंकारों का सम्मिलन कभी तिल-तंडुलवत् (मिले होने पर भी अलग अलग पहचाने जा सकें) संसृष्ट और कभी नीर-क्षीर वत् (जो मिले होने से अलग-अलग न पहचाने जा सकें) संकर होता है। अतः इस सम्मिलन के आधार पर इसके दो प्रकार होते हैं—

(१) संसृष्टि अलंकार

(२) संकर अलंकार

(१) संसृष्टि

जब एक से अधिक शब्दालंकार या अर्थालंकार अथवा शब्दार्थालंकार इस प्रकार मिले रहते हैं जैसे तिल और चावल (जो कि मिले रहने पर भी स्वतंत्र रूप से पहचाने जा सकते हैं) तो उसे संसृष्टि अलंकार कहते हैं।

'संसृष्टि' का अर्थ है 'संग' अथवा सम्मिलिन। यह संसृष्टि तीन प्रकार की होती है :—

(१) शब्दालंकार संसृष्टि—इसमें एक से अधिक शब्दालंकारों सा मेल होता है।

उदाहरण

दीरघ सांस न लेहि दुख, सुख साईं हिं न भूलि,
दई दई क्यों करतु है, दई दई सु कबूलि।

[बिहारी]

[इसमें छेकानुप्रास ('स' और 'द' वर्ण की एक बार आवृत्ति होने के कारण) और यमक (दई=दैव, दई=दिया) इन दो शब्दालंकारों की ऐसी संसृष्टि है कि ये अलग-अलग स्पष्ट विदित हो रहे हैं]

(२) अर्थालंकार संसृष्टि—जिसमें कई अर्थालंकारों का सम्मिलन होता है।

उदाहरण

(१) व्योम विपिन में जब बसंत सा, खिलता नव पल्लवित प्रभात,
बहते तब हम अनिल स्रोत में, गिर तमाल तमके से पात।

[बादल : पन्त]

[यहाँ 'व्योम बिपिन में' और 'अनिल स्रोत' में रूपक तथा 'बसंत सा' और 'तमाल तम के से पात' में उपमा अलंकार सम्मिलित होते हुए भी पृथक-पृथक हैं]

(२) सखी नीरवता के कंधे पर डाले बाँह,
छाँह सी अंबर पथ से चली।

[संध्या सुन्दरी : निराला]

[यहाँ उपमा (छाँह सी) और रूपक (अम्बर पथ) का सम्मिलन होते हुए भी भेद स्पष्ट है]

(३) शब्दार्थालंकार संसृष्टि—जिसमें शब्द एवं अर्थ दोनों प्रकार के अलंकारों का सम्मिलन होता है :—

उदाहरण

(१) सम सुबरन सुखमाकर सुखद न थोर,
सीय अंग सखि कोमल कनक कठोर।

[इसमें वृत्यानुप्रास ('स' और 'क' वर्ण की आवृत्ति होने से) और व्यतिरेक (उपमेय के रूप में सीता के अंग की उत्कृष्टता वर्णित होने से) का सम्मिलन हुआ है।]

(२) संकर

जहाँ कई अलंकार नीरक्षीरवत् ऐसे घुल-मिल जायें कि उनको पृथक नहीं किया जा सके वहाँ संकर अलंकार होता है।

इसके तीन भेद होते हैं—

(१) अंगांगि-भाव-संकर—जहाँ अनेक अलंकार एक दूसरे पर अंग और अंगी भाव से अन्योन्याश्रित होते हैं—वहाँ अंगांगिभाव संकर होता है।

उदाहरण

रावन सिर सरोज बन चारी,
चलि रघुवीर सिलीमुख धारी।

[यहाँ 'सिरसरोज' में रूपक और 'सिलीमुख' में श्लेष अलंकार है। श्लेष (सिलीमुख अंग) और रूपक (सिर-सरोज) अंगी होकर एक दूसरे पर आश्रित हैं। यहाँ उपमा को सार्थक करने के लिये श्लेष का आना आवश्यक था]

(२) संदेह संकर—जहाँ अनेक अलंकारों के सम्मिलन से किसी एक अलंकार का निश्चय न हो और संदेह बना ही रहे वहाँ संदेह संकर होता है।

उदाहरण

(१) जब शान्त मिलन संध्या को हम हेम जाल पहनाते,
काली चादर के स्तर का खुलना न देखने पाते।

[प्रसाद]

[यहाँ संध्या की लाली और रात्रि की कालिमा के स्थान पर 'हेमजाल' और 'कालीचादर' का वर्णन होने से रूपकातिशयोक्ति है पर साथ ही 'हेमजाल' (गुण) के साथ 'कालीचादर' (दोष) गुण दोष रूप में साथ होने से उल्लास अलंकार भी है। इन दोनों अलंकारों के निर्णय में संदेह है।

(२) मुख चन्द्र की शोभा बढ़ाती हास्य-द्युति ज्योत्सना सदृश,

[इसमें 'मुखचन्द्र'—में रूपक है परन्तु पूरी उक्ति में उपमा है। अतः निर्णय देने में संदेह है कि यहाँ उपमा होगा अथवा रूपक]

(३) एक वाचकानुप्रवेश संकर—जहाँ एक ही पद में अनेक अलंकारों की स्थिति होती है। वहाँ एक वाचकानुप्रवेश संकर होता है।

उदाहरण

(१) बंदों गुरु पद-पद-पदम-परागा,
सुरुचि सुवास सरस अनुरागा।

[यहाँ 'पद-पदम-परागा'—में परंपरित रूपक है साथ ही वत्यानुप्रास भी]

(२) सिंधु-सेज पर धरा वधू अब,
तनिक संकुचित बैठी सी।

[इसमें 'सिंधु-सेज' में रूपक अलंकार है साथ ही छेका-नुप्रास भी है]

संसृष्टि और एक वाचकानुप्रवेश संकर का अन्तर

[संसृष्टि में एक से अधिक अलंकार अलग-अलग पदों में मिला कर होते हैं परन्तु एक वाचकानुप्रवेश संकर में वे एक ही पद में होते हैं।